वेद सब
सत्य विद्याओं
का पुस्तक है, वेद का
पढ़ना पढ़ाना,
और सुनना सुनाना सब
आर्यों (श्रेष्ठ मनुष्यों) का
परम धर्म है।
– स्वामी दयानन्द सरस्वती

मुख्य वितरक

रणसिंह आर्य
द्वारा डॉ. सद् गुणा आर्या
'सम्यक्' कर्मचारी सोसायटी के पास
गांधीग्राम, जूनागढ़ (गुजरात) - ३६२००१

वेद प्रार्थना

प्रत्येक दिन वेद मन्त्रों का स्वाध्याय करने हेतु ३१ मन्त्रों की व्याख्या

ज्ञानेश्वरार्यः
दर्शनाचार्य-M.com

प्रकाशक
वानप्रस्थ साधक आश्रम
आर्य वन, रोजड़, गुजरात

ओ३म्

वेद प्रार्थना

प्रत्येक दिन वेद मन्त्रों का स्वाध्याय करने हेतु
३१ मन्त्रों की व्याख्या

(प्रथम–भाग)

लेखक

ज्ञानेश्वरार्यः

दर्शनाचार्य ***M.Com.***

प्रकाशक

वानप्रस्थ साधक आश्रम

आर्यवन, रोजड़, पत्रा. सागपुर, जि. साबरकांठा (गुज.) ३८३३०७

दूरभाष : (०२७७४) २७७२१७, (०२७७०) २५७२२४, २८७४१७

वानप्रस्थ साधक आश्रम : (०२७७०) २५७२२०

E-mail : darshanyog@gmail.com Website : www.darshanyog.org

१११११२२१

पुस्तक : वेद प्रार्थना (Ved Praarthanaa)

लेखक : ज्ञानेश्वर आर्य

प्रकाशन तिथि : मार्च, २००९, पौष २०६५

संस्करण : प्रथम

मूल्य : १०-०० रुपये

मुख्य वितरक : आर्य रणसिंह यादव
द्वारा डा. सद्गुणा आर्या
'सम्यक्', गांधीग्राम, जूनागढ, (गुजरात)

प्राप्तिस्थान

१. **आर्यसमाज मंदिर,** महर्षि दयानन्द मार्ग, रायपुर दरवाजा बाहर, कांकरिया, अहमदाबाद.

२. **विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द,** ४४०८, नई सड़क, दिल्ली-६.

३. **आर्ष गुरुकुल महाविद्यालय,** खर्राघाट, नर्मदापुरम्, होशंगाबाद (म.प्र.)

४. **ऋषि उद्यान,** आना सागर, पुष्कर रोड, अजमेर (राजस्थान) पिन-३०५००१

५. **गुरुकुल आश्रम,** आमसेना, खरियार रोड, जिला नवापारा, (उड़ीसा)

६. **श्री चंद्रेश आर्य,** ३१०-बी, साधु वासवाणी सोसा., गोपालपुरी, गांधीधाम (गुज.)

७. **आर्य समाज मन्दिर,** पोरबंदर, राजकोट, भरुच, मोरबी, टंकारा, जूनागढ़, गांधीनगर, आणंद, जामनगर आदि ।

प्राक्कथन

बहुत वर्षों से मन में इच्छा बनी हुई थी कि एक वेदमन्त्रों की व्याख्या-परक पुस्तक लिखूँ, जिसको पढ़कर अनायास ही पाठकों को वेद तथा वैदिक धर्म, संस्कृति, सभ्यता, रीति-नीति की महत्ता का, उपयोगिता का बोध हो और वे वेदों के प्रति रुचि लें। लिखना प्रारम्भ किया किन्तु अनेक प्रकार के व्यवधान, कार्याधिक्य, प्रवास, अनियमितता आदि कारणों से, कार्य पूरा नहीं हुआ, और पूरा होता हुआ भी नहीं दिखाई दिया। अतः आकार छोटा करके संक्षिप्त व्याख्या करने का निश्चय करके कार्य पुनः आरम्भ किया,पुनरपि सफलता नहीं मिली।

अन्त में ऐसा निर्णय लिया कि कम से कम ३१ मन्त्रों पर तो कुछ विचार लिख ही दूँ, जिसे पूरे मास तक, प्रत्येक दिन एक मन्त्र का तो स्वाध्याय लोग कर सकें। फिर आगे अवसर मिलेगा तो आगे लिखूँगा।

दृढ़ संकल्प करके बचे मन्त्रों की व्याख्या शुरु कर दी और कार्य पूरा हो गया। यद्यपि व्याख्या करते हुए ऋषिकृत शब्दार्थ तथा पूर्व विद्वानों की व्याख्याओं को आधार तो बनाया है पुनरपि मन्त्र के शब्दों के अर्थ व भाव, मेरी बुद्धि में जैसे उत्पन्न हुए, वैसे लिखे हैं। सम्भव है कहीं गौण मुख्य अर्थ का विपर्यास हो गया हो या कहीं मुख्य विषय से सम्बन्धित अर्थ के स्थान पर अवान्तर विषय को प्रधानता दे दी गई हो, किन्तु ऐसा प्रयास किया है कि किसी मंत्र का अनर्थ न हो।

स्वामी ध्रुवदेव जी, ब्र.ऋषिदेव जी, आचार्य दयानिधि जी आदि ने बहुत परिश्रम करके मेरी लिपि अस्पष्ट व अस्त-व्यस्त होते हुए भी संगणक-यन्त्र में उत्तम शब्द-संयोजन किया। अध्यापक प्रशान्त जी, ब्र. नवीन जी आदि ने तत्परतापूर्वक ईक्षण कार्य किया और प्रकाशन में ब्र. प्रियेश जी व ब्र.दिनेश कुमार जी ने पुरुषार्थ किया। एतदर्थ इन सभी का मैं हृदय से धन्यवाद करता हूँ। इस पुस्तक का प्रकाशन ग्रान्थम् इंग्लैण्ड के एक आर्य सज्जन के सहयोग से हुआ है। *सुधीजन न्यूनताओं का बोध कराकर ज्ञानवृद्धि करेंगे इसी आशा व विश्वास के साथ -*

शुभेच्छुक
ज्ञानेश्वरार्यः

वानप्रस्थ साधक आश्रम
आर्यवन, रोजड़
तिथि-फाल्गुन कृष्ण १३ वि. २०६५ (२४-३-२००९)

अनुक्रमणिका

विषय | **पृष्ठ संख्या**

❍ प्राक्कथन ३
१. अग्न आ याहि ५
२. य एक इत् तमु ७
३. अग्निना रयिमश्नवत् ९
४. मा प्र गाम पथो ११
५. अग्निना रयिमश्नवत् १३
६. मा स्रेधत सोमिनो १५
७. यदङ्ग दाशुषे त्वमग्ने १७
८. तमित् सखित्वं ईमह २०
९. ते हि पुत्रासोऽअदितेः २२
१०. स नः पितेव सूनवे २४
११. अकर्मा दस्युरभि नो २६
१२. अग्ने व्रतपते व्रतं २९
१३. अपां मध्ये तस्थिवांसं ३२
१४. न पापासो मनामहे ३४
१५. अश्वत्थे वो निषदनं ३७
१६. अस्मात्त्वमधि जातोऽसि ४०
१७. विश्वो देवस्य नेतुर्मर्तो ४३
१८. परि माग्ने दुश्चरिताद्बाधस्वा ४५
१९. उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते ४७
२०. यस्तिष्ठति चरति यश्च ५०
२१. इन्द्र श्रेष्ठानि द्रविणानि ५२
२२. उद्यानं ते पुरुष नावयानं ५४
२३. उलूकयातुं शुशुलूकयातुं ५६
२४. इन्द्रं वर्धन्तो असुरः ५९
२५. न वा उ देवाः ६२
२६. इच्छन्ति देवाः सुन्वन्तं ६४
२७. ज्यायस्वन्तश्चित्तिनो मा ६७
२८. यं स्मा पृच्छन्ति कुह ७०
२९. सत्यमिद्वा उ तं ७३
३०. बालादेकमणीयस्कमुतैकं ७५
३१. वेदाहमेतं पुरुषं महान्तम ७८

(१)

अग्न आ याहि वीतये गृणानो हव्यदातये ।
नि होता सत्सि बर्हिषि ॥ **(सामवेद १/१/१)**

शब्दार्थ :- अग्ने = हे सर्वश्रेष्ठ प्रभो **! आ याहि** = आइये **वीतये** = ज्ञान देने के लिये **गृणानः** = उपदेश करो **हव्यदातये** = भोग्य वस्तुओं को देने के लिए **होता** = आप दाता हो **बर्हिषि** = हृदय में **निसत्सि** = निरन्तर विद्यमान हो ।

व्याख्याः- हे समस्त ब्रह्माण्ड के रचयिता, रक्षक, पालक, पोषक, नियन्त्रक, निराकार, सर्वज्ञ, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी परमेश्वर ! हम अल्पज्ञ मनुष्य जानते हों या न जानते हों, मानते हों या न मानते हों, आपका ध्यान करते हों या न करते हों, आपके प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हों या न करते हों, आपका धन्यवाद करते हों या न करते हों । जीवन पथ पर चलते हुए आने वाली बाधाओं, अभावों, कष्टों, दुःखों को दूर करने के लिये आपसे ज्ञान, बल, साहस, उत्साह, पराक्रम आदि की भावना की याचना करते हों या न करते हों किन्तु यह सत्य है कि आप अनादि काल से हमारे साथ हो, साथ ही नहीं हमारे हृदयों के अन्दर निरन्तर विद्यमान हो तथा आगे भी अनन्त काल तक रहोगे।

हे सर्वश्रेष्ठ प्रभो ! आत्मा में सदा से आपकी विद्यमानता होते हुये भी हमें अनुभूति नहीं हो रही है कि आप हमारे मन में, बुद्धि में, इन्द्रियों में, शरीर में सदा से उपस्थित हो । हम आपको भूले ही रहते हैं । क्या हुआ एक आध घण्टे के लिये थोड़ी सी स्मृति उठाकर आपका अनुमान लगाते हों किन्तु दिन भर तो कार्यों को करते हुये भूले ही रहते हैं और हमारी आपको भूलने की स्थिति का परिणाम यह होता है कि हम अनिष्ट चिन्तन, अनिष्ट कथन, अनिष्ट व्यवहार करते हैं जिससे न केवल हम ही दुःखी होते हैं अपितु परिवार, समाज, राष्ट्र के व्यक्तियों को भी दुःखी बनाते हैं । इसलिये अब तो आपसे प्रार्थना है कि हे प्रभु देव ! आओ,

प्रकट होओ , हमें अपनी अनुभूति कराओ । सतत हमारे मन में इस बात का ज्ञान बना रहे कि आप हमारे अन्दर हो ।

हे सर्व आध्यात्मिक तथा भौतिक ज्ञानविज्ञानों, कलाओं को, विचित्र गुप्त सामर्थ्यों को प्रदान करने वाले परमेश्वर ! आप द्वारा हमें उत्तम-उत्तम ज्ञानविज्ञान की प्राप्ति होगी तो हम अपने समस्त कुसंस्कारों को दबाने में समर्थ हो जायेंगे, अपने समस्त कुटेवों को पकड़ने में समर्थ हो जायेंगे, अपने समस्त कुव्यसनों को निर्बल बनाने में समर्थ हो जायेंगे, अपनी समस्त काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि पापवृत्तियों को नष्ट करने में समर्थ हो ही जायेंगे ।

हे सर्वविद्या उपदेष्टा प्रभो ! आप तो हमारे गुरु हैं इसलिये आपसे यह प्रार्थना है कि आप हमारे अन्तःकरण में विराजमान होते हुए गुरु के समान उपदेश करो, हमें शिक्षा दो,हमें पढ़ाओ । जब आपका महान् ज्ञान–विज्ञान हमें मिल जायेगा तब तो हम जीवन में हर प्रकार से सुखी बन ही जायेंगे। जिन-जिन आवश्यक भोग्य वस्तुओं, साधनों की अपेक्षा होगी उन्हें प्राप्त कर ही लेंगे ।

आपसे तो बस यही प्रार्थना है कि आप सतत हमारे हृदयों में बैठे हुए हमें अपनी उपस्थिति की अनुभूति कराते रहें और निरन्तर हमें निर्देश करते रहें कि हम क्या करें, क्या न करें, क्या उचित है, क्या अनुचित, क्या धर्म है, क्या अधर्म, क्या लाभकारी है, क्या हानिकारक, क्या कर्त्तव्य है क्या अकर्त्तव्य, क्या उपयोगी है, क्या अनुपयोगी, क्या मुख्य है, क्या गौण ? यदि आपकी उपस्थिति का बोध हमें सतत बना रहा तो हमें किञ्चित् मात्र भी संशय नहीं कि हम सब प्रकार के अनिष्टों से बच जायेंगे और सर्वदा आनन्द में रहेंगे ।

★ ★ ★

(२)

य एक इत्तमु ष्टुहि कृष्टीनां विचर्षणिः ।
पतिर्जज्ञे वृषक्रतुः ॥ **(ऋग्वेद ६/४५/१६)**

शब्दार्थ :- कृष्टीनां = मनुष्यों का तो **य एक इत्** = जो एक ही है निश्चय से **विचर्षणिः**= सर्वद्रष्टा **वृषक्रतुः** = सर्वशक्तिमान् **पतिः** पालक, रक्षक **जज्ञ** = हुआ था, है और होगा **तम्-उ** = उसकी ही तू निश्चय से **स्तुहि** = स्तुति कर ।

व्याख्या :- हे मनुष्यो ! तुम केवल उसी एक परमात्मा की स्तुति-प्रार्थना-उपासना करो जो कि समस्त ब्रह्माण्ड के कण-कण में व्यापक होकर सब मनुष्यों के मन, वाणी तथा शरीर से किये जाने वाले कर्मों को प्रति पल देख रहा है, सुन रहा है, जान रहा है जो परमेश्वर सर्वदा तुम्हारे अंग-संग है, वह न कभी अलग था, न भविष्य में अलग होगा।

उस महान् सर्वशक्तिमान् परमेश्वर से बड़ा मनुष्यों का कोई भी हितैषी नहीं है, उससे बड़ा रक्षक भी नहीं है और मित्र भी नहीं है। वही मनुष्यों के अन्तःकरण में विराजमान होता हुआ सतत मार्गदर्शक बनता है , वही हमारा पालक है । संसार के जड़ और चेतन पदार्थ जिनसे हमारा पालन पोषण रक्षा होती है वे सभी उसी निराकार परमेश्वर ने बनाये हैं ।

माता, पिता, भाई, बन्धु, मित्र, गुरु, आचार्य, राजा इत्यादि जो भी मनुष्य तनधारी हमारी रक्षा करते हैं, पालन करते हैं उन सब को शरीर, इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि, बल, उत्साह, प्रेरणादि साधन वही सर्वव्यापक परमेश्वर ही प्रदान करता है ।

जिन वृक्ष, वनस्पति , कन्द-मूल-फल, औषधि, अन्नादि तथा पशु, पक्षी, कीट , पतंगादि प्राणी तथा पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश आदि भूत तथा भूतों से बनी पृथ्वी, सूर्य, चन्द्रादि ग्रह, उपग्रह, नक्षत्रादि पदार्थों से हमारे जीवन की रक्षा होती है वे भी उसी सर्वव्यापक परमेश्वर ने ही

बनाये हैं । यदि ईश्वर उन पदार्थों को, साधनों-उपसाधनों को बनाकर न दे तो ये जड़-चेतन पदार्थ हमारा कुछ भी उपकार नहीं कर सकते।

इसलिये हे मनुष्यों ! उस सर्वशक्तिमान्, सर्वज्ञ, न्यायकारी, कर्मफलदाता परमेश्वर को छोड़कर सांसारिक मनुष्य जो धन से, बल से, विद्या से, प्रतिष्ठा से, यश से प्रसिद्ध देखे जाते हैं उनकी स्तुति-प्रार्थना-उपासना न करो क्योंकि ये सभी मनुष्य ईश्वर की तरह सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, सर्वद्रष्टा, सर्वसामर्थ्यवान् नहीं हैं, सर्वात्मा हितैषी नहीं हैं, उनकी शक्ति, ज्ञान, बल, साधनादि सीमित है । वे विकट परिस्थितियों में मनुष्यों को रोता, विलखता, तड़फता हुआ देखकर भी छोड़ देते हैं । वे हमारी पूर्ण रक्षा नहीं कर पाते हैं, वे हमारे पूर्ण दुःखों को दूर नहीं कर पाते हैं, वे हमारी सम्पूर्ण भावनाओं को जान नहीं पाते हैं, अज्ञान, अभाव, अशक्ति के कारण हमारे साथ अन्याय भी कर देते हैं । मिथ्या धारणाएँ भी बना लेते हैं, संशय भी कर लेते हैं, हमसे ईर्ष्या-द्वेष भी करते हैं ।

इसलिये जो कभी भी हमारा साथ नहीं छोड़ता, जो हमारी समस्त भावनाओं को जानता है, जो सच्चा मार्गदर्शक हैं, पालक है, पोषक है, पूर्ण हितैषी है ,उसी की हम स्तुति-प्रार्थना-उपासना करेंगे तो हमें सफलता मिलेगी अन्यथा नहीं ।

★ ★ ★

(३)

अग्निना रयिमश्नवत् पोषमेव दिवे दिवे ।
यशसं वीरवत्तमम् ॥ **(ऋग्वेद १/१/३)**

शब्दार्थ :- अग्निना = ईश्वर की आज्ञाओं का पालन करते हुए **रयिम्** = विद्या, धनादि को **अश्नवत्** = प्राप्त करें जो **पोषमेव** = पुष्टि करने वाला हो **दिवे दिवे** = प्रत्येक दिन **यशसम्** = यश को बढ़ाने वाला हो **वीरवत्तमम्** = वीर, निर्भीक बनाने वाला हो ।

व्याख्या :- हे परमपिता पवित्र परमेश्वर ! आप द्वारा प्रदत्त वैदिक धर्म और विधि-विधान के अनुसार ही हम अर्थोपार्जन करेंगे और ऋषियों द्वारा प्रतिपादित शास्त्रों में उल्लेखित सिद्धान्तों, निर्देशों का परिपालन करते हुए ही उस अर्थ से भोग्य साधनों का संग्रह करेंगे और महापुरुषों द्वारा आचरित व्रतों, संकल्पों से युक्त होकर ही उन भोग्य साधनों का सुख प्राप्त करेंगे इसके विपरीत अपनी इच्छा से या समाज में प्रचलित अवैदिक, अप्रामाणिक, अनादर्श, हानिकारक शैली से न अर्थोपार्जन करेंगे, न साधनों का संग्रह करेंगे, न उनसे विषय भोगों को भोगेंगे।

प्रभुदेव ! कैसी विचित्र स्थिति है कि भूमि, भवन, धन, सम्पत्ति, विलास -वैभव के प्रचुर साधनों को उपलब्ध करने पर भी हमारे मन में निर्भीकता, शान्ति, प्रसन्नता, तृप्ति, स्वतन्त्रता की स्थिति नहीं है । इस का कारण अब समझ में आ रहा है कि यह धन, भोगोपभोग के साधन पवित्र नहीं है। जो धन आपकी आज्ञा, आपके निर्देश , ऋषियों के संकेत, शास्त्रों में वर्णित विधि विधानों के अनुसार अर्जित नहीं किया जाता है वह अपवित्र होता है। वह धन हिंसा, झूठ, छल-कपट, मिलावट, रिश्वत आदि अनुचित उपायों व साधनों से उपार्जित होता है और ऐसा धन अर्थ न होकर अनर्थ होता है। ऐसे अनर्थ से सुख, शान्ति, प्रसन्नता, नींद, भूख, स्वास्थ्य, सन्तोष, तृप्ति, स्वतन्त्रता की उत्पत्ति नहीं होती है ।

हे सर्वज्ञ, सर्वान्तर्यामी अग्निदेव ! आपकी उपासना करते हुए और आपकी आज्ञाओं, निर्देशों का पालन करते हुए पवित्र धन को हम समाज, राष्ट्र, विश्व के कल्याणार्थ दान, सत्संग, साधु सेवा, चिकित्सालय, औषधालय, विद्यालय, गौशाला, अनाथालय आदि उत्तम कार्यों में लगाकर यश, प्रतिष्ठा, सम्मान, कीर्त्ति को बढ़ावें ।

हे परमेश्वर ! आपकी इच्छानुसार अर्थोपार्जन तथा अर्थविनिमय करने से ही मनुष्यों की स्वार्थवृत्ति,कायरता, भीरूता, निर्बलता, आलस्य-प्रमाद, कंजूसी आदि नष्ट होती है और मनुष्यों को शारीरिक सौन्दर्य, पुष्टि, बल, लावण्य आदि की प्राप्ति होती है और उनके मानसिक उत्साह, बल, पराक्रम, प्रगल्भता, वीरता की वृद्धि होती है। बुद्धि में सात्त्विकता, मेधा, एकाग्रता, निर्णय शक्ति बढ़ती है और आत्मा में शान्ति, प्रसन्नता, आनन्द की प्राप्ति होती है। आपकी आज्ञाओं तथा निर्देशों के पालन करते हुए जीवन चलाने पर ही उत्तम सन्तानों की प्राप्ति होती है और वे दुराचार, भ्रष्टाचार, नास्तिकता, स्वच्छन्दता, आलस्य-प्रमाद, लम्पटता, उद्दण्डता, अन्याय, अत्याचार आदि दोषों से रहित होकर अपने उत्तमोत्तम गुण-कर्म-स्वभावों से समाज, राष्ट्र की कीर्ति को बढ़ाते हैं तथा श्रेष्ठ उत्तम कार्यों को करते हुए सत्कीर्ति की सुगन्ध को सर्वत्र फैलाते हैं ।

हे अंग-अंग में व्याप्त प्रभो ! आपसे यही प्रार्थना है कि जो कुछ करें, आपकी आज्ञा के अनुकूल ही करें। आप तो हमारे अन्तःकरण में विराजमान होकर प्रतिदिन, प्रतिघण्टे, प्रतिक्षण हमें निर्देश करते रहो। आप जैसा कहेंगे हम वैसा ही करेंगे, उसके विपरीत नहीं करेंगे यह हमारा आज से संकल्प है, इस संकल्प को आप पूर्ण करें ।

★ ★ ★

(४)

मा प्र गाम पथो वयं मा यज्ञादिन्द्र सोमिनः।
मान्तः स्थुर्नो अरातयः ॥

(ऋग्वेद १०/५७/१, अथर्ववेद १३/१/५९)

शब्दार्थ :- **मा** = नहीं **प्रगाम** = छोड़कर चलें **पथो** = सन्मार्ग को **वयं** = हम **मा** = नहीं **यज्ञाद्** = यज्ञ को छोड़कर चलें **इन्द्र** = ऐश्वर्यशाली परमेश्वर **सोमिनः** = ऐश्वर्य युक्त होकर **मा** = नहीं **अन्तः** = अन्दर **स्थुः** = ठहरें **नो** = हमारे **अरातयः** = अदान भाव कंजूसी ।

व्याख्या :- हे परमेश्वर ! जब हम वेदादि सत्यशास्त्रों से अपने जीवन की तुलना करते हैं तो हमें यह स्पष्ट प्रतीति होती है कि हमनें सत्य मार्ग को छोड़ दिया है , आदर्श मार्ग को छोड़ दिया है, वेद मार्ग को छोड़ दिया है, महापुरुषों के बताये मार्ग को छोड़ दिया है, श्रेय मार्ग को छोड़ दिया है, देवयान को छोड़ दिया है, निःश्रेयस पथ को त्याग दिया है। प्रभो ! आपसे यही हमारी प्रार्थना है कि अब आगे हम सन्मार्ग पर ही चलें ।

निश्चित ही सत्यधर्म पर चलने में, आदर्श, न्याय, कर्त्तव्य पथ पर चलने में कष्ट आते हैं, बाधाएं आती हैं, विरोध होता है, अभाव आता है, आक्षेप किया जाता है, दुःखी होना पड़ता है किन्तु जब आपसे ज्ञान, बल, शक्ति, साहस, पराक्रम, धैर्य, उत्साह मिलेगा तो इन सब को हम सहन कर लेंगे । सत्यमार्ग से विचलित नहीं होंगे, घबरायेंगे नहीं, रुकेंगे नहीं, झुकेंगे नहीं, हताश-निराश नहीं होंगे, चलते ही रहेंगे, और अधिक गति से और अधिक आगे और अधिक आदर्शों के साथ बढ़ते ही रहेंगे।

प्रभुदेव ! आपसे हमारी प्रार्थना है कि हम कभी भी यज्ञ करना न छोड़ें, परोपकार करना न छोड़ें, त्याग करना न छोड़ें, सेवा करना न छोड़ें ये सब उत्तम कर्म हमारे जीवन का, हमारी दिनचर्या का अंग बन जाए। आदर्श दिनचर्या, व्यायाम, भ्रमण, स्नान, ध्यान, यज्ञ, वेदपाठ, स्वाध्याय, सत्संग, दान, सेवादि से रहित होकर धनोपार्जन न करें क्योंकि इन सब अनिवार्य, अपरिहार्य वेद निर्दिष्ट कर्त्तव्य कर्मों छोड़कर ऐश्वर्य प्राप्त करने का प्रयास करेंगे तो वह ऐश्वर्य

हमारे विनाश का कारण बन जायेगा। आपको आप के बताए सिद्धान्तों, नीति-नियमों, अनुशासनों, विधि-विधानों को छोड़कर जो व्यक्ति लौकिक धन-सम्पत्ति, पद-प्रतिष्ठा, साधन-सुविधा, ऐश्वर्य को प्राप्त करता है वह अनेक प्रकार के दोषों से ग्रस्त हो जाता है। धीरे-धीरे उसके विचारों, व्यवहारों में अनेक प्रकार की बुराइयाँ आ जाती हैं और उनका पता भी नहीं चलता है। इन बुराइयों से वह न केवल स्वयं अपने ही विनाश का कारण बनता है अपितु अपने परिवार, समाज, राष्ट्र को भी अपने कुकृत्यों से संतप्त करता रहता है।

सत्य मार्ग पर चलने के लिये आवश्यक है कि आप हमारे अन्तःकरण में जन्म-जन्मान्तर के बने हुए समस्त अविद्याजनित कुसंस्कारों को नष्ट कर दो, उन्हें जला दो । इन अरातियों-शत्रुओं को पूर्णतः नाश कर दो जब तक ये कुसंस्कार अन्तःकरण में रहेंगे तब तक हमारे जीवन में कृपणता, स्वार्थभावना, ईर्ष्या, द्वेष, आलस्य-प्रमाद, अभिमान, झूठ, छल-कपट, हिंसा आदि व्यवहार चलते रहेंगे । इसलिए हमारी तो यही प्रार्थना है कि इन समस्त अरातिभावों को नष्ट कर दो,इन्हें दग्धबीजभाव अवस्था में पहुंचा दो। इसी अरातिभाव=दान न देना=त्याग न करने की प्रवृत्ति ने हमें अत्यन्त स्वार्थी, कृपण, कंजूस बना दिया है । हमारे चारों तरफ लोग भूखे, नंगे, रोगी, अज्ञान, अन्यायग्रस्त होकर दुःखी हो रहे हैं। हे देव ! हमारे अन्तःकरण में ऐसी उदात्त भावनाएं भर दो कि अपने आसपास भूखे, नंगे, निर्धन, रोगी, असहाय, अन्याय, अज्ञानग्रस्त लोगों को देखकर हमारा हृदय पिघल जाये। हम अपने धन, सम्पत्ति, साधन, सामर्थ्य, ज्ञान, बल, शक्ति, अधिकार, समय, पद-प्रतिष्ठा के साथ इनके कल्याण के लिए त्याग करें, पुरुषार्थ करें । इन सबको अपने समान ही स्वस्थ, सम्पन्न, सुशिक्षित, सदाचारी, सुखी बना लेवें, ऐसी प्रेरणा हमारे हृदयों में भरो।

हे देव ! हमारे इन स्वार्थ, कृपणतारूपी आन्तरिक शत्रुओं को आप नष्ट कर देंगे तो हम पवित्र बनकर आपके आदेशों का पालन करते हुए न केवल अपने जीवन को उत्तम बना लेंगे अपितु समाज, राष्ट्र, विश्व के जीवन को भी उत्कृष्ट बना ही लेंगे, इसमें कोई संशय नहीं है।

★ ★ ★

(५)

अन्ति सन्तं न जहात्यन्ति सन्तं न पश्यति ।
देवस्य पश्य काव्यं न ममार न जीर्यति ॥

(अथर्ववेद १०/८/३२)

शब्दार्थ :- अन्ति सन्तं न जहाति = अन्दर बैठे ईश्वर से मनुष्य कभी पृथक्-अलग नहीं हो सकता **अन्ति सन्तं न पश्यति** = उस अन्दर बैठे हुए को देख भी नहीं सकता **देवस्य पश्य काव्यं** = उस ईश्वर के कार्यों को देखो **न ममार न जीर्यति** = जो न मरता है, न पुराना होता है।

भावार्थ :- हे परमेश्वर ! कैसी विचित्र स्थिति है कि अनादि काल से आप हम जीवात्माओं के अन्दर व्यापक रुप से विद्यमान हैं आपको कोई पृथक् नहीं कर पाया है न आपसे कोई जीव अलग हो सका है। हम जीवात्मा व्याप्य हैं और आप प्रभो व्यापक हैं। यह व्याप्य-व्यापक सम्बन्ध अनादि, अनन्त है। मोक्ष, बन्ध, प्रलय सभी अवस्थाओं में हम जीवों के अन्दर आप सदा विद्यमान थे, हैं तथा रहेंगे। इससे भी आश्चर्य यह है कि नित्य व्यापक रूप में रहने वाले आप को हम जीव अपनी आँखों से देख भी नहीं सकते हैं क्योंकि आप निराकार हैं, अप्राकृतिक हैं, अगोचर हैं। आँखों से रूप, आकार वाली वस्तु दिखाई देती है। आपका न कोई रूप है, न रंग है, न आकार है।

यदि आँखों से ही देखना है तो ईश्वर की कृति वेद को देखो। इस महाकाव्य को पढ़ने से उसके गुण-कर्म-स्वभाव का पता चलता है अथवा ईश्वर की दूसरी कृति यह संसार देखो। संसार की विशालता, विचित्रता, भव्यता, दिव्यता, नियमितता को देखकर उस परमेश्वर की शक्ति, ज्ञान, सामर्थ्य आदि गुण-कर्म-स्वभावों का परिज्ञान हो सकता है।

वेद परमपिता का काव्य है जो सृष्टि के आदि में उसने चार ऋषियों के हृदयों में प्रकाशित किया था और उन्होंने अन्य मनुष्यों को सिखाया, फिर परम्परा से वह ईश्वरीय काव्य वेदज्ञान एक-दूसरे से सुनते-सुनाते, पढ़ते-पढ़ाते, सिखते-सिखाते चला आ रहा है। जैसे १ अरब ९६ करोड़ ८ लाख ५३ हजार वर्ष पहले था वैसे का वैसा ही अक्षुण्ण रूप में, बिना किसी विकार के, त्रुटि के, न्यूनता के चलता आ रहा है और यह महाकाव्य पूरे सृष्टि के काल (४ अरब ३२ करोड़ वर्ष) तक वैसा ही बना रहेगा। यह ज्ञान निधि न कभी पुरानी होगी न जीर्ण-शीर्ण होगी, न नष्ट होगी।

यह ज्ञान राशि समस्त ब्रह्माण्ड के सभी ग्रहों में, जिनकी संख्या हम गिन नहीं सकते सभी मनुष्यों को दी जाती है। इस महाकाव्य में मनुष्यों को अपना जीवन सुख-सुविधा, सरलता, सफलतापूर्वक चलाने के लिए आवश्यक समस्त ज्ञान-विज्ञान प्रदान किया है। कोई भी विषय छूटा नहीं है। इसी के अनुसार चलकर मनुष्य अनिष्टों से बचकर सुखी हो सकता है।

इसी प्रकार यह दूसरा- काव्य-कृति है दिखाई देने वाला संसार। इसमें सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी, ग्रह, उपग्रह सभी वैसे के वैसे ही हैं जैसे कि १ अरब ९६ करोड़ वर्ष पूर्व थे। पृथ्वी पर नदियाँ, पहाड़, मैदान, जंगल भी वैसे ही हैं-रहेंगे। पशु-पक्षी, कीट-पतंग भी वैसे ही हैं जैसे थे और वृक्ष-वनस्पति अन्य कन्द-मूल-फलादि भी वैसे ही बने रहेंगे।

यह मिथ्या धारणा है कि जीवों का विकास होते-होते मनुष्य बना है। जब कि सत्य यह है कि सृष्टि के आदि में मनुष्य पशु पक्षी, कीट-पतंग सभी एक साथ बने और सृष्टि के अन्त तक वैसे ही रहेंगे न विशेष ह्रास होगा न वृद्धि। और यह भी धारणा मिथ्या है कि अकाल ही किसी दुर्घटना से इस पृथ्वी का विनाश हो जायेगा तथा कोई उल्का तारा ग्रह-उपग्रह आदि अकस्मात् आकर इससे टकरायेगा और यह टूट फूट जायेगा। सत्य यह है कि सूर्योदय, चन्द्रमा की कलाएं सतत चलती ही रहेंगी। सर्दी, गर्मी, वर्षा आदि ऋतुएँ सतत बनती रहेंगी। गंगा, यमुना, मिसिसिपि, वोल्गा, नील नदियाँ बहती रहेंगी। खेतों में सतत् खाद्यान्न उत्पन्न होते रहेंगे, कभी बन्द नहीं होंगे।

सृष्टि की रचना, संगठन, विनाश सर्वशक्तिमान् सर्वज्ञ, सुव्यवस्थित ईश्वर के द्वारा सम्पादित होता है। इसलिए इसका जीवन काल सुनिश्चित समय के पश्चात् होगा तभी वह अपनी शक्ति ज्ञान से इसे नष्ट करेगा पहले विनाश नहीं होगा।

हे प्रभो ! आपके महान् गुण-कर्म-स्वभावों को देखकर आपके अस्तित्व का अनुमान प्रमाण से तो बोध होता ही है किन्तु हमें इतने से सन्तोष नहीं है। आप हैं भी और दिखाई भी नहीं दे रहे हैं यह स्थिति व्याकुल करने वाली है। अब तो हम अपने हृदय में साक्षात् आपकी अनुभूति करना चाहते हैं। प्रभु देव अब तो अपनी ही कृपा से हमारे हृदय में प्रकाशित हो जाओ तभी हमारा अज्ञान-अन्धकार नष्ट होगा और सम्पूर्ण दु:ख-पीड़ा-बन्धनों-कष्टों से छूट कर पूर्ण आनन्द के भागी बनेंगे।

★ ★ ★

(६)

मा स्त्रेधत सोमिनो दक्षता महे कृणुध्वं राय आतुजे ।
तरणिरिज्जयति क्षेति पुष्यति न देवासः कवत्नवे ॥

(ऋग्वेद ७/३२/९)

शब्दार्थ :- मा स्त्रेधत = हिंसा मत करो **सोमिनः** = ऐश्वर्य की इच्छा रखने वालो **महे राये** = महान् धन के लिए **राय आतुजे** = बल के लिए **दक्षत कृणुध्वं** = पुरुषार्थ करके योग्यता बनाओ **तरणि इत्** = नौका के समान **जयति** = जय-सफलता को प्राप्त होता है **क्षेति** = बसता है, बसाता है **पुष्यति** = फलता फूलता है उन्नति को प्राप्त होता है **देवासः** = उत्तम मनुष्यों का धन, बल, विद्या **न कवत्नवे** = बुरे कार्यों के लिए नहीं होता है ।

भावार्थ :- मनुष्य शरीरधारी प्रत्येक बुद्धिमान् को जीवन में सफलता प्राप्त करने के लिए धन, बल, विद्या, सुख, यश, प्रतिष्ठा आदि की कामना होती ही है, यह स्वाभाविक है । बिना धन के तो मनुष्य कुछ भी नहीं कर सकता किन्तु धन को प्राप्त करने के लिए मनुष्यों को पहले बाल्यावस्था से ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए विद्या, बल, धर्म, चरित्र का निर्माण करने का वेद में निर्देश है । दृढ़ संकल्प को धारण करके पुरुषार्थ, त्याग-तपस्या के माध्यम से योग्यता का सम्पादन किया जाता है बिना कुशलता, प्रवीणता, बुद्धिमत्ता, साहस, पराक्रम, उत्साह के कोई भी व्यक्ति धनोपार्जन नहीं कर सकता ।

वेद के माध्यम से ईश्वर आदेश करता है कि मनुष्यों धन की प्राप्ति के लिए हिंसा मत करो, पाप मत करो । आज झूठ, छल, कपट, मिलावट, हेराफेरी, रिश्वत आदि अनैतिक साधनों से धन का संग्रह किया जाता है और ऐश्वर्यशाली बनने की कामना पूरी की जाती है।

झूठ, छल, कपट ,अन्यायादि अनैतिक साधनों से धन तो प्राप्त हो जाता है, तथा उससे भोग्य साधनों को भी प्राप्त किया जा सकता है और भोग्य साधनों को भोग कर कुछ समय के लिए विषयसुखों को भी प्राप्त किया जा सकता है किन्तु अनैतिक रूप से, हिंसा से, छल-कपट से, अन्याय से कमाया धन, मन में शान्ति प्रदान नहीं करा सकता, बुद्धि में एकाग्रता उत्पन्न नही करा सकता,

आत्मा में आनन्द की उत्पत्ति नहीं करा सकता । अनिष्ट साधनों से प्राप्त धन, मन में भय, शंका, लज्जा, अशान्ति, खिन्नता, दुःख ही उत्पन्न करता है इसलिए वेदानुसार हमें ज्ञान, बल, कुशलता, प्रवीणता आदि योग्यताओं का सम्पादन करके न्याय, धर्म, नीति से धनोपार्जन करना चाहिए ।

न्याय, धर्म, नीति से धनैश्वर्य को प्राप्त करके व्यक्ति, अपने धन से न केवल अपना व अपने परिवार का ही पालन-पोषण करता है अपितु अन्यों की उन्नति हेतु भी अनेक प्रकार से सहयोगी बनता है, समाज राष्ट्र के अज्ञान,अन्याय, अभाव से ग्रस्त लोगों के कष्टों-दुःखों को दूर करता है, नाव के समान उनको भी दुःखसागर के पार लगा देता है । ऐसे परोपकारी, धार्मिक व्यक्ति ही शुभ कर्मों के कारण समाज राष्ट्र में सम्मान, प्रतिष्ठा, यश, कीर्ति को प्राप्त होते हैं, उनकी कीर्ति हजारों, लाखों वर्षों तक मनुष्य समाज में बनी रहती है ।

जो महानुभाव धर्माचरण के माध्यम से ऐश्वर्य को प्राप्त होते हैं उनके लिए भी वेद का संकेत है कि वे उपार्जित धन के विषय में सतर्क-सावधान रहें क्योंकि धन का यह स्वभाव है कि जिनका जीवन संयमी, त्यागी, तपस्वी, व्रती, सदाचारी नहीं होता है उनको वह धन आलसी, प्रमादी, लापरवाह, अकर्मण्य, विषयभोगी, लम्पट बना देता है । ऐसे अकर्मण्य व्यक्तियों का जीवन अनेक प्रकार के कुव्यसनों, दुराचारों, कुटेवो से युक्त हो जाता है । वे इन दुर्गुणों के कारण रोगी, निर्बल, निस्तेज, अल्पायु वाले होकर शीघ्र ही प्रयाण कर जाते हैं, बल्कि कु कर्मों के कारण जीते हुए ही अपयश, बदनामी, कुख्याति के कारण नष्ट-भ्रष्ट हो जाते हैं । उनकी प्रतिष्ठा, सम्मान, श्रद्धा समाज के लोगों में समाप्त हो जाती है, यह जीते जी मृत्यु तो और अधिक दुःखदायी होती है ।

इसलिए वेद कहता है योग्यता-पात्रता का सम्पादन करके धन प्राप्त करो और उसका खर्च भी उत्तम कार्यों में करो और अपने जीवन को विलासी, भोगी, कुव्यसनी न बनने दो तभी धन का समुचित लाभ प्राप्त होगा । ईश्वर हमारे पर कृपा करे कि हम उसकी आज्ञा का पालन करते हुए अपनी योग्यताओं को बढ़ावें तथा प्राप्त ऐश्वर्य से अन्यों को भी सुलाभ पहुँचावें ।

★ ★ ★

(७)

यदङ्ग दाशुषे त्वमग्ने भद्रं करिष्यसि ।
तवेत्तत्सत्यमङ्गिरः ॥ **(ऋग्वेद १/१/६)**

शब्दार्थ :- **यद्** = जो **अंग** = हे सबका परममित्र **दाशुषे** = आत्मबलिदान करने वाले का **त्वम्** = तू **अग्ने** = हे जगदीश्वर **भद्रम्** = कल्याण **करिष्यसि** = करता है **तव** = तेरा **एतत्** = यह **सत्यम्** = व्रत है स्वभाव है नियम है **अङ्गिरः** = रक्षा करने वाला ।

भावार्थ :- वेद के माध्यम से ईश्वर उपदेश करता है कि जो मनुष्य स्वार्थ को छोड़कर या गौण करके समाज राष्ट्र के हित तन- मन -धन का त्याग करता है, है उसको मैं सुख देता हूँ , उसकी उन्नति करता हूँ ,उसकी यश कीर्ति को फैलाता हूँ , उसको दुःखों, कष्टों, अभावों, अन्यायों से रहित करके परमानन्द की प्राप्ति कराता हूँ। ईश्वर कहता है कि यह मेरा व्रत है, संकल्प है, नियम है, प्रतिज्ञा है, मेरा स्वभाव है दानी त्यागी व्यक्ति को सुख देना, इसके विपरीत जो व्यक्ति स्वार्थी, हिंसक, अन्यायी, पक्षपाती, झूठे , छली-कपटी हैं उनको मैं को दुःख, पीड़ा, बन्धन, भय, चिन्ता प्रदान करता हूँ ।

संसार में तो इसके विपरीत ही दिखाई देता है कि त्यागी, संयमी, आदर्श व्यक्तियों को तो अनेक प्रकार के दुःख भोगने पड़ते हैं और स्वार्थी, झूठे, छली-कपटी मौज उड़ा रहे हैं, सुख, सम्पन्नता से युक्त होते हैं । ऐसी विपरीत स्थिति को देखकर सामान्य मनुष्य को यह संशय हो जाता है कि ईश्वर की वेद की बातें सच्ची हैं या झूठी । अनेक बार तो सच्चे व्यक्ति, आदर्श व्यक्ति इन विपरीत परिस्थितियों के कारण अपने सच्चाई, आदर्श को छोड़कर बुरे व्यक्ति के समान आचरण करने वाले बन जाते है। उनका सत्य, धर्म, न्याय, वेद, ईश्वर, कर्मफल, पुनर्जन्म आदि से विश्वास हट जाता है ।

वस्तुतः यथार्थ स्थिति यह है कि ईश्वर किसी मनुष्य का कल्याण केवल इतने मात्र से ही नहीं कर देता है कि कोई उसकी प्रार्थना करता है, मन्त्रपाठ

करता है, जप करता है, ध्यान करता है, स्वाध्याय करता है, गीत गाता है, यज्ञ करता है, दान देता है अपितु इन सब के साथ साथ उस धार्मिक-ईश्वर भक्त व्यक्ति को स्वस्थ, बलवान, धनवान्, विद्वान् भी बनना चाहिए।

आज प्रायः देखने में आता है कि प्रथम तो धार्मिक, आदर्श व्यवहार करने वाले संगठित नहीं हैं और न वे बुरे व्यक्तियों की बुराईयों को रोकने के लिए योजनाबद्ध रूप में विरोध करते हैं । अतः बुरे व्यक्ति अच्छे व्यक्तियों को दुःख देने में सफल हो जाते हैं । व्यवहार काल में अच्छे धार्मिक व्यक्ति भी किन्हीं विषयों में सूक्ष्मता से विचार किए बिना, बिना परिणामों -प्रभावों का विचार करके कार्य प्रारम्भ कर देते हैं इसलिए भी उन्हें कष्ट उठाने पड़ते है । अनेक बार यह भी देखने में आता है कि बुरे व्यक्ति वाक् चातुर्य के कारण, वक्तृत्व शक्ति के कारण, अच्छे वकीलों के कारण, जनसामान्य को भड़काकर, मिथ्या आरोप लगाकर भी भ्रान्तियाँ फैला देते हैं और उन्हें दोषी सिद्ध कराकर कष्ट पहुँचा देते हैं ।

एक बात यह भी है कि धार्मिक ईश्वर भक्त व्यक्ति पूर्णरूपेण, सर्वात्मना, सर्वदा, सर्वथा, ईश्वर की आज्ञाओं का पालन नहीं करते हैं वे भी कुछ मात्रा में ईश्वर आज्ञा भंग करने के कारण दण्ड के भागी बन जाते हैं। अन्तिम, विशेष जानने, समझने योग्य बात यह है कि ईश्वर समर्पण क्या है, यह किस प्रकार होता है, इसकी विधि क्या है ? यह बिना शास्त्रों को यथार्थ रूप में पढ़े, समझे बिना नहीं होता है और तदनुसार पूर्ण शक्ति, सामर्थ्य, पुरुषार्थ, ज्ञान, बल, त्याग, तप के समर्पण किए बिना भी ईश्वर कष्टों को दूर नहीं करता है ।

ईश्वर की, वेद की, शास्त्रों की, ऋषियों की सामान्य रूप से थोड़ी सी बातों का आचरण करके व्यक्ति यह मान लेता है कि मैं पूर्णरूपेण ईश्वर के सर्मर्पित हूँ । उसकी समस्त आज्ञाओं का पालन कर रहा हूँ । वास्तव में वह मात्र १०-२० प्रतिशत ही सर्मर्पित होता है, ऐसी स्थिति में भी ईश्वर उसका पूर्ण कल्याण नहीं करता है। जो जितनी मात्रा में समर्पित होता है उतनी मात्रा में ही ईश्वर उसका कल्याण करता है ।

इसलिए वेद की बातों पर संशय नहीं करना चाहिए कि ईश्वर आत्मबलिदानी को, स्वार्थत्यागी को, नि:स्वार्थ भावना वाले व्यक्ति को, मन-वचन-शरीर से जो कुछ करता है वह ईश्वर की आज्ञा के अनुसार ही करता है उसे निश्चित ही परम अलौकिक सुख प्रदान करता है ।

आओ ईश्वर विश्वासी भक्तो, ईश्वर समर्पित स्वार्थत्यागी महानुभावो, हम सभी सर्वात्मना जैसे ईश्वर ने वेद में लिखा है तदनुसार आचरण करें अपने व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक, राष्ट्रीय कर्त्तव्यों को कुशलता-प्रवीणता पूर्ण, सतर्कता पूर्वक पूरा करते हुए ईश्वर को प्राप्त करें। हे परमप्रिय प्रभो ! आपसे हमारी हार्दिक विनम्र प्रार्थना है कि आप हमारे अन्त:करण में ऐसी अटूट श्रद्धा भर दो कि हम जो कुछ करें आपकी आज्ञा के अनुसार करें, नि:स्वार्थ भावना से करें, आपको प्राप्त करने के लिए करें, हम पूर्ण समर्पित हो जावें ।

★ ★ ★

(८)

तमित् सखित्वं ईमहे तं राये तं सुवीर्ये ।
स शक्र उत नः शकदिन्द्रो वसु दयमानः ॥ (ऋग्वेद १/१०/६)

शब्दार्थ :- तम् इत् = उसी ईश्वर के साथ **सखित्वं** = मित्रता की **ईमहे** = इच्छा करते हैं, याचना करते हैं **तम्** = उसकी की मित्रता करें **राये** = धन, बल, सामर्थ्य के लिए **तम्** = उसी की मित्रता करें **सुवीर्ये** = पराक्रम के लिए, बल, उत्साह के लिए **स:** = वह परमेश्वर **शक्र:** = महान् सामर्थ्य वाला है **उत न:** = और हमको भी **शकत्** = अनन्त सामर्थ्य से युक्त कर सकता है **इन्द्र:** = वह परमैश्वर्यवान् है **वसु दयमान:** = विद्या, बल, चक्रवर्ती साम्राज्य को भी प्राप्त कराने वाला है ।

भावार्थ :- जो आकाश के समान व्यापक, सूर्य के समान प्रकाशवान्, वायु के समान निराकार है, जिसने समस्त ब्रह्माण्ड की रचना की है और पालन कर रहा है ,जो हमें सृष्टि के आदि में वेदों का ज्ञान देता है, साथ ही हमारे अन्त:करण में विराजमान होकर अच्छे बुरे का परिज्ञान कराता है, उत्तम धर्मयुक्त कार्यों के करते समय मन में आनन्द, उत्साह, निर्भीकता उत्पन्न करता है और बुरे कार्यों के करते समय मन में भय, शंका, लज्जा उत्पन्न करता है तथा हमारे मन, वचन व शरीर से किए जाने वाले कर्मों का साक्षी है और फलदाता है ,उस परमेश्वर का मुख्य नाम ओ३म् है, वही हमारा परम मित्र है, परम हितैषी है, परम सुहृद है, परमसुख प्रदान करने वाला है । उसी अन्तर्यामी परमेश्वर के साथ मित्रता बनानी चाहिए क्योंकि वही ईश्वर हमें उत्तम धन, बल ,उत्साह, सामर्थ्य प्रदान करता है और वही महान् पराक्रम, साहस, दृढ़ता प्रदान करने वाला है ।

वह ईश्वर कण-कण में व्यापक है और निराकार है किन्तु सर्वशक्तिमान् होने के कारण वह ईश्वर शीघ्र ही समस्त ब्रह्माण्ड के लोक लोकान्तरों की रचना कर देता है । जो मनुष्य उस अनन्त-विचित्र सामर्थ्य वाले परमेश्वर की स्तुति-प्रार्थना- उपासना करता है । उस सच्चे भक्त को ईश्वर आश्चर्य उत्पन्न करने वाले अलौकिक सामर्थ्य से युक्त, विचित्र गुण-कर्म-स्वभाववाला बना देता है । उन विशिष्ट गुण-कर्म-स्वभाव, सामर्थ्य, ज्ञान, बल, योग्यता को प्राप्त करके ही मनुष्य सामाजिक, राष्ट्रीय, विश्व स्तर

के अनुपम, अद्वितीय, पराक्रम वाले कार्यों को, असम्भव जैसे दिखाई देने वाले कार्यों को सम्पन्न कर देते हैं ।

उस ईश्वर का नाम इन्द्र है क्योंकि वह परम शान्ति, सुख, तृप्ति ,सन्तोष आदि ऐश्वर्यों को धारण करता है और धार्मिकों को इस ऐश्वर्य को प्रदान भी करता है। सच्चे ईश्वर की सच्ची भावना से और सच्ची विधि से उपासना करने वाले उपासकों को निश्चित ही वह परम शक्ति, बल, ज्ञान-विज्ञान, सामर्थ्य प्रदान करता है । इसी ईश्वर प्रदत्त सामर्थ्य के कारण वे समाज राष्ट्रोद्धार के विशेष कार्यों को सम्पन्न करने का मन में संकल्प धारण करते हैं और त्याग-तप-पुरुषार्थ-बुद्धि-चातुर्य-कुशलता-नीति-साहस-संगठन आदि गुणों के कारण उन प्रयोजनों में शीघ्र ही सफल भी हो पाते हैं ।

उस एक निराकार, निरंजन ,नायक, शर्मद, नरेश की उपासना करने वाले उपासक न केवल अपने व्यक्तिगत अभावों, न्यूनताओं, निर्बलताओं, कुटेवों, कुव्यसनों व रोगों को दूर करते हैं अपितु पारिवारिक समस्याओं, उलझनों, वैर-विरोधों को समाप्त कर देते हैं और सामाजिक व राष्ट्रीय स्तर की समस्त समस्याओं का समाधान करके, राष्ट्र को सुसंगठित भी कर देते हैं। इतना ही नहीं सम्पूर्ण विश्व में एक अखण्डित चक्रवर्ती साम्राज्य की भी स्थापना कर देते हैं । समस्त देशों में रहने वाले लोगों के भिन्न भिन्न भाषा, भूषा, भोजन, भक्ति, भगवान्, संविधान, परम्पराओं, रीति-रिवाजों, मान्यताओं से सम्बन्धित परस्पर विरोधों को दूर करके, उन सब में एकत्व की स्थापना कर देते हैं, यह सब ईश्वर से प्राप्त विशेष ज्ञान-बल के आधार से ही संभव है ।

इसलिए परमेश्वर हम आपसे अत्यन्त गद्-गद् होकर प्रार्थना कर रहे हैं कि आप हमारे परम सखा बन जाओ, हमारा पथ प्रदर्शन करो, हमारे मार्गदर्शक बन जाओ ,आपके आदेशानुसार ही हम कार्यों को करेंगे। आपकी मित्रता से ही हम अपने सभी आन्तरिक शत्रुओं का विनाश करके ,फिर बाहरी शत्रुओं पर विजय प्राप्त करके, विश्व में पुनः चक्रवर्ती साम्राज्य की स्थापना करने में समर्थ हो जाएँ ऐसा सामर्थ्य, बल, उत्साह, पराक्रम हमारे अन्तःकरण में भर दो, यह सब आपकी कृपा से ही संभव है । हम तुच्छ जीव अपने सामर्थ्य से तो कुछ भी नहीं कर सकते । आप पर ही पूरा भरोसा है, आप ही पूरा करेंगे ।

★ ★ ★

(९)

ते हि पुत्रासोऽअदितेः प्र जीवसे मर्त्याय ।
ज्योतिर्यच्छन्त्यजस्त्रम् ॥ (यजु. ३/३३)

शब्दार्थ :- ते हि = वे ही निश्चय से **पुत्रासः** = पुत्र हैं, सन्तान हैं, पालक हैं, रक्षक हैं **अदितेः** = ईश्वर के / मातृभूमि के जो **प्र जीवसे** = जीवन के लिए **मर्त्याय** = मनुष्य - समाज के लिए, राष्ट्र के लिए **ज्योतिः** = प्रकाश-ज्ञान- आदर्श **यच्छन्ति** = देते हैं, फैलाते हैं **अजस्त्रम्** = निरन्तर।

भावार्थ :- मातृभूमि के, ईश्वर के सच्चे सपूत तो वे ही मनुष्य होते हैं जो मनुष्य समाज में वैदिक ज्ञान की ईश्वरीय वेद की ज्योति जलाते हैं। समाज में व्याप्त अभाव, अन्याय, अज्ञान, पाखण्ड, अन्धविश्वास, स्वार्थ-नास्तिकता भोगवाद से ग्रस्त समाज को सत्य, ज्ञान, धर्म, न्याय, समृद्धि, शिक्षा, सेवा, परोपकार, दया, क्षमा, संयम, त्याग तथा तपस्या से युक्त करते हैं ।

जैसे सूर्य के पृष्ठभाग वाली पृथ्वी पर अन्धकार व्याप्त हो जाता है तब उस अन्धकार का आश्रय लेकर हिंसक क्रूर पशु-पक्षी कीट-पतंग चारों तरफ विचरने लगते हैं ठीक वैसे ही मानव समाज में जब वेद-ज्ञान-रूपी सूर्य का अस्त हो जाता है तब अनेक प्रकार के अवैदिक मत-पंथ-संप्रदाय, गुरुडमों को अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिए अवसर मिल जाता है। आदर्श वेदवित् धार्मिक, परोपकारी, वैराग्यवान, निष्काम -भावना वाले, विद्वानों का अभाव हो जाने के कारण, समाज में सच्चे ईश्वर, धर्म, शिक्षा, संस्कृति, सभ्यता, आचार-विचार, नैतिकता का लोप हो जाता है और सत्य, न्याय, दया, क्षमा, संयम, धैर्य, प्रेम और परोपकार के अभाव के कारण परिवार, समाज तथा राष्ट्र में सर्वत्र भय, भ्रम, संशय, अशान्ति, चिन्ता, स्वार्थ व दुःख का साम्राज्य व्याप्त हो जाता है ।

इन सब दुरावस्थाओं को दूर करने का एक ही श्रेष्ठतम उपाय है सत्य सनातन वैदिक धर्म की समाज में पुनः स्थापना करना। इसके लिए त्यागी, तपस्वी, वैराग्यवान, नैष्ठिक, धार्मिक, ईश्वरभक्त, निष्कामसेवी विद्वानों का होना आवश्यक है जो सर्वस्व की आहुति लगाकर, समाज में व्याप्त अज्ञान, अन्याय, अभाव को अपने विचारों, प्रवचनों तथा सुकर्मों से दूर कर देवें।

केवल अपने वृद्ध माता-पिता को दो समय की रोटी खिला देने, अच्छे वस्त्र पहिना देने से ही हिसाब चुकता नहीं हो जाता, जबकि समाज देश में लाखों करोड़ों माताएँ व भाई-बहन अज्ञान, अन्याय, अभाव से ग्रस्त हों, वे भी हमारे ही माता-पिता व भाई-बहन हैं। उनका जीवनस्तर उन्नत करना भी हमारा कर्त्तव्य है। सामाजिक राष्ट्रीय हितों की रक्षा के लिए व्यक्तिगत यहाँ तक कि पारिवारिक स्वार्थों की बलि चढ़ा देना ही सच्ची आस्तिकता, ईश्वरभक्ति, राष्ट्रीयता, मानवता का प्रतीक है। सच्चे ईश्वर पुत्र, मातृभूमि के पुत्र, वे ही हैं ,जो समाज राष्ट्र में आदर्शों की स्थापना के लिए तन-मन-धन का सर्वस्व का त्याग करते हैं ऐसी उच्चतर प्रकृति वालों को ही सच्चा ईश्वर भक्त कहा जा सकता है।

हे परमेश्वर ! कृपा करो, हमारे देश में ऐसे ईश्वर पुत्र उत्पन्न हों, जो कि समाज राष्ट्र की इस दुरावस्था को सुधारने हेतु सर्वस्व की आहुति दे देवें । हे प्रभो ! हमारी माताएँ बाल्यकाल से ही, गोद में ही, बल्कि गर्भावस्था में ही अपनी सन्तानों में ऐसी उदात्त भावनाएं भर दें कि वे राष्ट्र की उन्नति के लिए जीवन को समर्पित कर दें । माता-पिता अपने सन्तानों के मन में यह बातें भर दें कि "आज समाज राष्ट्र में प्राचीन सत्य सनातन वैदिक मान्यताओं-मर्यादाओं का, विधि-विधानों का ह्रास हो गया है, मैं उसके उत्थान के लिए आत्मोत्सर्ग करने से भी नहीं हिचकिचाऊँगा ।" केवल माता-पिता, पुत्र-पुत्री, पत्नी, सम्बन्धियों की रक्षा-पालन, सेवा-सुश्रुषा से ही सन्तुष्ट नहीं रहूँगा,अपितु सम्पूर्ण राष्ट्र के व्यक्तियों के जीवन को उन्नत करने के लिए, सच्चे ईश्वर ,सच्चे धर्म का प्रचार-प्रसार करूँगा । यज्ञ, सन्ध्या, स्वाध्याय, सत्संग, सेवा, आदर्श दिनचर्या, सात्विक भोजन, विनम्रता, सरलता, त्याग, तपस्या, पुरुषार्थ, संयम आदि वैदिक आदर्श परम्पराओं का प्रचार-प्रसार करूँगा ।"

हे प्रभो ! अब तो आप से ही प्रार्थना है कि हमारे हृदयों में समाजोद्धार, देशोद्धार के सुसंस्कारों को भर दो । उन्हें लुप्त होती जा रही गौरवमयी वैदिक संस्कृति की पुनः स्थापना के लिए प्रेरित करो, वे सर्वात्मना सर्वस्व की आहुति देकर भी समाज राष्ट्र विश्व में व्याप्त अज्ञान-अन्धकार को दूर करके, वैदिक ज्ञान का प्रकाश करें जिससे धरती पर पुनः सुख, शान्ति, प्रेम, निष्ठा, सद्भाव, निर्भीकता व स्वतन्त्रता की स्थापना हो ।

★ ★ ★

(१०)

स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव ।
सचस्वा नः स्वस्तये ॥ **(यजु. ३/२४)**

शब्दार्थ :- **सः** = वह **नः** = हमारा **पिता** = पिता **इव** = के समान है **सूनव** = पुत्र के लिए **अग्ने** = हे अन्तर्यामी प्रभो ! **सु-उपायनः भव** = सरलता से हमारे हृदय में प्राप्त हो जाओ **सचस्व-आ** = प्रेरित करो, युक्त करो **नः** = हमको **स्वस्तये** = कल्याणकारी शुभ कर्मों के लिए ।

भावार्थ :- हे अन्तर्यामिन् प्रभो ! आप हमारे पिता के समान पालक हो, रक्षक हो, प्रेरक हो, शिक्षक हो । हे परमपिता परमात्मन् ! आप हमें ऐसी विधि बताएँ कि जिससे हम आप को अपने हृदय में सरलता, शीघ्रता से अनुभव कर सकें जिससे कि आप और हम सतत कल्याणकारी उत्तम विचारों से युक्त हो जायें, श्रेष्ठ कर्मों को करने में प्रवृत्त हो जायें और व्यक्तिगत, पारिवारिक, समाज, राष्ट्र की उन्नति हेतु सक्षम बन जायें ।

जिसने हमें उत्पन्न किया वह मनुष्य हमारा पिता है, जो व्यक्ति हमारा पालन-पोषण करता है वह भी हमारा पिता है। गुरु ,मित्र, सम्बन्धी, विद्वान् आदि जो कोई भी हमारा पालन करता है, रक्षा करता है वह हमारा पिता कहलाने के योग्य है। किन्तु समस्त ब्रह्माण्ड का रचयिता, रक्षक, पालक, पोषक, सर्वान्तर्यामी, निराकार ईश्वर, जो उपर्युक्त सभी लौकिक पिताओं का भी पिता है, वह अन्तर्यामी ईश्वर ही सब जीवों का सच्चा, नित्य, अनादि व अनन्त काल से पिता है। लौकिक पिता तो अज्ञान के कारण, स्वार्थ के कारण, लोभ के कारण अपनी सन्तानों को हिंसा, झूठ, छल-कपट, अन्याय, पक्षपात आदि अनिष्ट कार्यों को करने की प्रेरणा भी कर देते हैं, किन्तु भगवन् आप ऐसे सच्चे पूर्ण हितैषी सर्वज्ञ पिता हैं जो कभी भी अपनी सन्तानों को बुरा कार्य करने की प्रेरणा नहीं देते अपितु जब भी मन में बुरा कर्म करने की इच्छा होती है तब आप मन में भय-शंका-लज्जा उत्पन्न करते हैं और अच्छे कार्यों को करने पर मन में आनन्द-उत्साह-निर्भीकता उत्पन्न करते हैं ।

हे अन्तर्यामिन् प्रभुदेव ! अनेक बार ऐसे अवसर भी आते हैं जब हमारे संसारी पिता हमें रोता, तड़फता दुःखी देखकर भी निःसहाय हाथ

पर हाथ रखे हुए खड़े रहते हैं, मौन होकर, गर्दन झुकाकर अथवा रोते हुए, आँसु बहाते रहते हैं किन्तु हमारी पालना, रक्षा, सहयोग नहीं कर पाते हैं, हमारे कष्टों-दु:खों-रोगों-विपत्तियों को दूर नहीं कर पाते हैं । अनेक बार तो ऐसी बुरी स्थिति में वे हमारे पास भी नहीं आते हैं, मुखड़ा मोड़ लेते हैं, अलग हो जाते हैं । हे प्रभो ! कभी कभी तो ऐसी विकट परिस्थितियाँ भी देखने को मिलती हैं कि ये लौकिक पिता ,रक्षक हमें रोता-बिलखता-तड़फता देखकर अपने जीवन को बचाने के लिए, अपनी इज्जत बचाने के लिए हमें मृत्यु के मुख में छोड़कर भाग जाते हैं बल्कि हमारा विरोध करते हैं, हानि करते हैं, निन्दा-चुगली भी करते हैं ।

अध्यापक, पुलिस, डाक्टर, वकील, इन्जीनीयर, न्यायाधीश, किसान, व्यापारी, सैनिक आदि सभी हमारे पिता हैं, रक्षक हैं किन्तु कभी-कभी इनमें से कोई कोई रक्षक के स्थान पर भक्षक भी बन जाते हैं । हे अन्तर्यामिन् पिता ! इन सभी लौकिक पिताओं ने हमारा जो कुछ भी हित किया है वह आपसे ज्ञान-बल-साधनों को लेकर ही किया है, ये स्वयं अपने सामर्थ्य से अन्यों का उपकार करने में कुछ भी समर्थ नहीं हैं । हे सच्चे पिता ! इन लौकिक पिताओं से तो हम यदा कदा ही कुछ कुछ माँगते हैं और ये भी हमें यदा कदा ही इच्छित पदार्थों में से कुछ कुछ ही देते हैं ,सदा नहीं देते हैं, लेकिन हे परमपिता ! आप तो सतत, पल-पल हमारी सहायता, रक्षा, पालन, पोषण करते ही रहते हैं, एक क्षण के लिए भी आपका पितृत्व संरक्षण न हो तो हमारा अस्तित्व ही समाप्त हो जाए ।

हे प्रभुदेव ! आपसे तो हमारी यही विनती है कि जैसे छोटे बच्चे की उसके माता-पिता-गुरु-आचार्य आदि रक्षा करते हैं, वैसे हमारी रक्षा करो, हमें महान् कार्यों को करने के लिए आत्मा में प्रेरणा करो, हमारे हृदयों में उत्साह भरो, पराक्रम उत्पन्न करो, हमारे में साहस-बल-वीर्य उत्पन्न करो, जिससे कि हम आप से रक्षित होकर, पोषित होकर, प्रेरणा प्राप्त करके, समाज, राष्ट्र, विश्व के उद्धार के लिए, विशेष कार्यों का सम्पादन कर सकें, यही आपसे हमारी प्रार्थना है ।

★ ★ ★

(११)

अकर्मा दस्युरभि नो अमन्तुरन्यव्रतो अमानुषः ।
त्वं तस्या मित्रहन् वधर्दासस्य दम्भय ॥ (ऋग्वेद १०/२२/८)

शब्दार्थ :- **अकर्मा** = पुरुषार्थहीन मनुष्य **दस्युः** = असुर है **अभि** = हानि करता है **नः** = हमारी **अमन्तुः** = विचार न करने वाला **अन्यव्रतः** = उल्टे कर्म करने वाला **अमानुषः** = मनुष्यता से गिरा हुआ = पशुवत् **त्वम्** =तू **तस्य** = उस **दासस्य** = दस्यु का **अमित्रहन्** = हे शत्रुनाशक **वधः** = नष्ट करने वाला है **दासस्य** = दस्यु का **दम्भय** = नाश कर।

भावार्थ :- वेद कहता है कि दुष्ट बुद्धि वाला मनुष्य दस्यु है ऐसे मनुष्य अपने अल्प, विकृत, विपरीत ज्ञान के कारण न केवल अपने जीवन को दु:खी बनाते हैं, अपितु अपनी दुष्टता से, परिवार-समाज-राष्ट्र और विश्व के मनुष्यों के जीवन को भी दु:खी बनाए रखते हैं ।

इसमें प्रथम कोटि के दुष्ट बुद्धि वाले मनुष्य हैं **''अकर्मा''** = अर्थात् जो मनुष्य बिना पुरुषार्थ किए, बिना परिश्रम त्याग तपस्या किए, बिना ही भाग दौड़ के, पसीना बहाए, कष्टों को सहन किए, बिना ही नैतिक कर्त्तव्य-कर्मों को किए, बिना ही धन प्राप्त करना चाहते हैं, लखपति करोड़पति बनना चाहते हैं, उस धन से भोग-साधन-सामग्री को प्राप्त करना चाहते हैं, और भोगों को भोग कर सुख प्राप्त करना चाहते हैं, समाज राष्ट्र को बिना ही कुछ दिए या बहुत कम लाभ पहुँचाकर बदले में भोग, ऐश्वर्य, विलास, मनोरंजन तथा सुख-सुविधाओं को प्राप्त करना चाहते हैं, वे राक्षस हैं, असुर हैं । ऐसे मनुष्य मात्र अपनी बुद्धि चातुर्य से, झूठ-छल-कपट, धोखा-धड़ी, चालाकी, प्रलोभन, प्रवंचना इत्यादि अनैतिक साधनों से भोग सामग्री प्राप्त करना चाहते हैं वे **''अकर्मा''** नामक दस्यु कहलाते हैं ।

दूसरी कोटि के दस्यु हैं **''अमन्तु''** = अर्थात् जो मनुष्य अपने विचारों, वाणियों , व्यवहारों का अपने पर, अपने परिवार के सदस्यों पर, अपने

मित्र साथी सम्बन्धी समाज राष्ट्र के व्यक्तियों पर क्या प्रभाव पड़ेगा इसका विचार किए बिना ही कर्मों को कर देते हैं ऐसे अमन्तु दस्यु व्यक्ति दूरदर्शिता पूर्वक यह भी नहीं विचारते हैं कि मेरे कार्यों, व्यवहारों का, हमारे शाश्वत् धर्म-संस्कृति-सभ्यता-आचार-विचार आदर्श परम्पराओं पर क्या कुप्रभाव पड़ेगा । इसका सूक्ष्मता से विचार किए बिना ही, क्षणिक लाभ, सुख-सम्मान, सुविधा के कारण बुरे कार्यों को कर लेते हैं और अपने मन में ईश्वर, वेद, ऋषि, शास्त्र तथा प्रमाणों को विशेष महत्त्व दिए बिना ही, अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए अनिष्ट कर देते हैं। ऐसे व्यक्ति ''**अमन्तु**'' नामक दस्यु कहलाते हैं ।

तीसरे प्रकार के दस्यु हैं ''**अन्यव्रत**'' = अर्थात् नास्तिक व्यक्ति । जो न ईश्वर को मानते हैं, न आत्मा को, न पुनर्जन्म को मानते हैं, न कर्मफल को, न पाप-पुण्य को, न शास्त्रीय प्रमाणों व सत्य परम्पराओं को मानते हैं। ऐसे व्यक्तियों का लक्ष्य येन-केन-प्रकारेण मात्र धन प्राप्त कर के५ इन्द्रियों के विषय भोगों को भोगना होता है, ऐसे व्यक्तियों का शराब, मांस, जुआ, व्यभिचार, हिंसा तथा चोरी आदि बुराइयों से परहेज नहीं होता है। उनके लिए अहिंसा, संयम, त्याग, तपस्या, व्रत, अपरिग्रह, वैराग्य, समाधि, ध्यान, ईश्वर साक्षात्कार, निष्कामता एवं मोक्ष आदि मान्यताएँ व्यर्थ होती हैं ये ''**अन्यव्रत**'' नास्तिक मात्र एक ही जीवन को मानते हैं, वह भी आकस्मिक (बिना कर्त्ता के)। उन्हें अपना सुख, अपना धन, अपने साधन, अपनी सम्पत्ति तथा अपनी भूमि ही दिखाई देते हैं।

चौथी कोटि के दस्यु हैं ''**अमानुष**'' = अर्थात् अत्यन्तक्रूर, दयाहीन, हिंसक मनुष्य जो धन, भोग व सुख-सुविधा के लिए किसी भी व्यक्ति की हत्या कर देते हैं, किसी की भी इज्जत लूट लेते हैं, कहीं भी आग लगा देते हैं, मार काट कर देते हैं या बम फेंक देते हैं ये ''**अमानुष**'' नाम के दस्यु, मनुष्य स्वभाव से रहित अन्यव्रत, तामसिक प्रवृत्ति वाले पिशाच वा दैत्य होते हैं शरीर तो इनका मनुष्य जैसा होता है किन्तु कार्य इनके पशुओं से भी क्रूर हिंसक होते हैं ।

हे परमेश्वर ! आप तो ऐसे दस्युओं का विनाश करके दण्ड देते हैं विभिन्न नारकीय योनियों में डालते ही हैं । हमें भी ऐसी शक्ति, साहस, बल, पराक्रम व उत्साह प्रदान करें कि ऐसे दस्युओं का दमन करने के लिए तथा इन्हें रोकने के लिए सुसंगठित होकर कुछ आयोजन करें और परिवार, समाज,राष्ट्र तथा विश्व की रक्षा करने में समर्थ हों । अच्छे धार्मिक, आर्य, सज्जन पुरुष अधिक मात्रा में होते हुए भी संगठित न हों, इन दस्युओं के विनाश के लिए कोई आयोजन न करें और उसके लिए तन-मन-धन का त्याग न करें तो ये थोड़े से ही दस्यु, बहुसंख्यकवाले भले मनुष्यों को दु:ख पहुँचाते रहते हैं इसलिए कृपा करके हमें संगठित होने, एक समान विचार, सिद्धान्त तथा आयोजन हेतु प्रेरित करो और समाज राष्ट्र में से इन दस्युओं के विनाश के लिए सर्वस्व की आहुति देने हेतु हमें प्रेरित करो, यह हमारी आपसे विनम्र प्रार्थना है ।

★ ★ ★

(१२)

अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे राध्यताम् ।
इदमहमनृतात्सत्यमुपैमि ॥ **(यजुर्वेद. १/५)**

शब्दार्थ :- अग्ने = हे ज्ञानस्वरूप परमेश्वर ! **व्रतपते** = हे व्रतों के पालक, व्रतों की रक्षा करने वाले **व्रतं चरिष्यामि** = मैं प्रतिज्ञा करूँगा **तत् शकेयम्** = उसके पालन में समर्थ बनूँ **तत् मे राध्यताम्** = मेरा व्रत सफल होवे **इदम्** = वह प्रतिज्ञा यह है कि **अहम्** = आज से मैं **अनृतात्** = असत्य से छूटकर **सत्यम्** = सत्य का **उपैमि** = ही पालन करूँगा।

भाावार्थ :- हे सर्वव्यापक अग्नि देव ! आप स्वयं व्रतों के पालक हो, आप अपने नीति-नियमों, विधि-विधानों, व्रतों संकल्पों को कभी भी नहीं तोड़ते हो, सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय, पालन, संरक्षण, जीवों को वेदों का ज्ञान, कर्मफल प्रदान, मन में अच्छे-बुरे की पहचान का संकेत सम्बन्धी सभी कार्यों को यथा समय करते हो, उनमें कभी भी, किञ्चित् मात्र भी न्यूनता नहीं होती है ।

हे व्रतों के स्वामिन् ! हम मनुष्यों की स्थिति तो यह है कि अच्छे कार्यों को करने और बुरे कार्यों को न करने का व्रत तो अनेक बार धारण करते हैं किन्तु अपने ही आलस्य, प्रमाद, विस्मृति तथा अनेक प्रकार की प्रतिकूलताओं, बाधाओं के, कष्टों के उपस्थित होने पर, उन व्रतों के पालन में शिथिलता आ जाती है ,उनका पालन छूट जाता है । किन्तु हे व्रतपते परमेश्वर ! अब हमारी समझ में यह अच्छी प्रकार से आ गया है कि यदि संसार में सुख, शान्ति, निर्भीकता, सन्तोष, स्वतन्त्रता आदि की स्थिति बनाए रखनी है तो हमें आप द्वारा किए गये निर्देशों का पालन करना ही पड़ेगा। यदि हम आप द्वारा निर्दिष्ट विधि-विधान, जो वेद में उल्लेखित हैं उनका संकल्पपूर्वक, पूर्ण पुरुषार्थ, त्याग-तपस्यायुक्त, सतर्कता, सावधानी से पालन करेंगे तो सुख ही मिलेगा, इसके विपरीत उन नियमों विधि-विधानों का पालन नहीं करेंगे तो निश्चित ही आपकी ओर से दु:ख ही मिलेगा, यह आपका नियम है । हम अपनी बुद्धि से, तात्कालिक परिस्थितियों से

प्रभावित होकर, आपके नीति- नियमों में, वेद आदि सत्यशास्त्रों के सिद्धान्तों में, ऋषियों के संदेशों में, परिवर्तन, परिवर्धन, संशोधन कर देते हैं, हमारी आप पर, आपके नीति-नियमों पर पूर्ण श्रद्धा नहीं है, पूर्ण निष्ठा नहीं है, पूरा विश्वास नहीं है । हम स्वयं को आप से अधिक बुद्धिमान् समझ लेते हैं । यहीं से हमारी भूलें प्रारम्भ हो जाती है ।

अग्निदेव ! आज मैंने यह दृढ़ निश्चय किया है कि भविष्य में जैसे आपने वेदों में लिखा है, ऋषियों ने शास्त्रों में वर्णन किया है, महापुरुषों ने जैसा व्यवहार किया है वैसा ही मैं आचरण करूगाँ । सत्य, धर्म, न्याय, त्याग, तप, निष्कामता के पालन का व्रत धारण करता हूँ और असत्य, अधर्म, अन्याय, स्वार्थ, आलस्य, सकामता के परित्याग का संकल्प करता हूँ । हे प्रभुदेव ! अब मेरी समझ में आ गया है कि बिना संकल्पों के साधना नहीं होगी और साधनों का संग्रह नहीं होगा और बिना साधना के, बिना तपस्या के ,सिद्धि की प्राप्ति नहीं होगी, जितने भी महापुरुष हुए हैं, उन सभी के अपने प्रयोजनों, लक्ष्यों ,उद्देश्यों की प्राप्ति में व्रतों, संकल्पों प्रतिज्ञाओं ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी है, इसलिए मैं भी आज इस महान् साधन 'व्रत' को अपना रहा हूँ ।

हे इष्ट देव ! मैंने अब तक यह अनुभव किया है कि व्रतों के पालन करने हेतु मनुष्यों को अनेक प्रकार की बाधाओं से, आपत्तियों से जूंझना पड़ता है, संघर्ष करना पड़ता है, आलस्य, प्रमाद, लापरवाही, लोभ, कष्ट, दु:ख, भूख-प्यास, अपमान, आरोप, विरोध आदि अनेक प्रकार के बाधक इन व्रतों के पालन करते समय उपस्थित हो जाते हैं । मैं अकेला अल्पज्ञ, अल्पशक्तिमान् इन संकल्पों का पालन करने में नितान्त असमर्थ हूँ ,यह मैंने पिछले जीवन में प्रत्यक्ष अनुभव कर लिया है ।

इसलिए आपसे मेरी प्रार्थना है कि आप अपने व्रतों के पालक व रक्षक तो हैं ही मेरे भी व्रतों संकल्पों के रक्षक, पालक, सहयोगी तथा मार्गदर्शक बन जाओ । मुझ में इतनी शक्ति, साहस, बल, ज्ञान, पराक्रम ऐवं उत्साह प्रदान करो कि किसी भी परिस्थिति में असत्य के समक्ष झुकूँ

नहीं, अधर्म के आगे परास्त न होऊँ, अन्याय के सामने घुटने न टेकूँ तथा मैं तन-मन-धन लगाकर, बल्कि प्राणों का बलिदान देकर भी सत्य का पालन करूं । जैसा मैंने देखा है, सुना है, जैसा मैंने पढ़ा है, जाना है, अनुमान लगाया है जैसा मेरे मन में ज्ञान है वैसा ही वाणी से बोलूं, शरीर से करूं । भगवन् ! मैं जानता हूँ कि सत्य पर चलना तलवार की धार पर चलना है, किन्तु जब आप का साथ मिल जायेगा, आपका बल, साहस, पराक्रम, विज्ञान मिल जायेगा तो सब कुछ सम्भव हो जायेगा । आप जिसके साथ हैं, आप जिसके सहयोगी हैं, उसको क्या कठिनाई होगी ? कुछ भी हो, हमें आप पर पूरा भरोसा है कि आप हमारे व्रतों के पालन करने में हर प्रकार से सहायता करेंगे ।

★ ★ ★

(१३)

अपां मध्ये तस्थिवांसं तृष्णाविदज्जरितारम् ।

मृळा सुक्षत्र मृळय ॥ (ऋ . ७/८९/४)

शब्दार्थ :- **अपां मध्ये** = पानी के बीच में **तस्थिवांसम्** = बैठे हुए मुझको **तृष्णा-अविदत्** = प्यास लगी है **जरितारम्** = मुझ भक्त को **आ-मृड** = सब प्रकार से सुखी कर **सुक्षत्र** = शुभ आशीर्वाद देने वाले **मृडय** = सुखी बना ।

भावार्थ :- हे आनन्द के भण्डार प्रभुदेव ! आप ने यह संसार ऐश्वर्यों से भर रखा है, वह सब कुछ, जो मैंने चाहा, आप द्वारा प्राप्त बुद्धि, शक्ति, साधनों से प्राप्त कर ही लिया है । मेरे पास किसी भी भौतिक वस्तु की कमी नहीं है, मैं देख रहा हूँ, ज्यों ज्यों मेरी अवस्था बढ़ती जा रही हैं, त्यों त्यों मेरी आवश्यकताएँ, अपेक्षाएँ, भी बढती जा रही हैं, वस्त्र, भोजन, यान, मकान, सुविधा, साधन, ठाठ बढ़ते ही जाते हैं । वर्तमान की कामनाओं की पूर्ति होते ही तत्काल दूसरी नयी कामनाएँ उत्पन्न हो जाती हैं ।

हे परमानन्द ! एक भ्रान्ति मन में बन गयी थी कि जीवन की सभी समस्याओं का समाधान मैं बाहर के दृश्य साधनों से, धन-सम्पत्ति का अधिकाधिक संग्रह करके, इनसे भोग्य वस्तुओं को एकत्रित करके कर लूँगा, मैं शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध विषय वाली उत्कृष्ट वस्तुओं को प्रचुर मात्रा में भोग कर शान्त हो जाऊँगा, तृप्त हो जाऊँगा, सन्तुष्ट हो जाऊँगा। किन्तु मेरी तृष्णा नहीं मिटी बल्कि बढ़ती ही चली गयी, इतना ही नहीं इन प्रचुर भोग सामग्री तथा भोगों ने मुझे रोगी बना दिया है, मैं इन विषयों का गुलाम बन गया हूँ, विषयभोगों के संस्कार इतने प्रबल बन गये हैं कि अब न चाहते हुए भी इनके बिना सुख-सुविधापूर्वक जीवन चला नहीं सकता । इस भोगासक्ति ने मेरे आत्मबल को दबा दिया है, मैं जानता हूँ कि यह काम उचित है, कर्त्तव्य है, आदर्श है, सत्य है, धर्म है, लाभकारी है, सुखदायक है पुनरपि अशक्त बना हुआ कर नहीं पा रहा हूँ इसी प्रकार यह जानता हुआ भी कि यह कार्य अनुचित है, अन्याय है, असत्य है,

अधर्म है, दुःखदायी है, पुनरपि रोक नहीं पाता हूँ, न न करते हुए भी कर लेता हूँ, ऐसी दुरावस्था मेरी बन गयी है ।

हे शक्तिशाली, निराकार, व्यापक, परमेश्वर ! प्राकृतिक धन-सम्पत्ति ऐश्वर्य बल को तो प्राप्त किया किन्तु आत्मिक बल ऐश्वर्य, सम्पत्ति कुछ भी प्राप्त नहीं की। हे प्रभो ! इन नाना चित्र-विचित्र विषय भोगों से कदाचित् कुछ काल के लिए इन्द्रियों की लोलुपता की पूर्ति होने पर शान्ति मिल भी जाए किन्तु इन दृश्यमान विषयों के उपभोग से आत्मा की प्यास तो कदापि नहीं बुझ पाती है । विषय-तृष्णा ऐसी प्यास है कि ज्यों-ज्यों इसे भोग कर दूर करना चाहते हैं त्यों-त्यों अधिक बढ़ती है । हे देव ! ऋषियों ने हमारे समक्ष इन सत्य सिद्धान्तों को दया करके प्रस्तुत कर दिया है कि ''समस्त विश्व भर के भोग्य पदार्थ केवल एक व्यक्ति को भोगने हेतु दे दिए जाएँ फिर भी वह इन सब से तृप्त नहीं हो सकता'', इस सिद्धान्त का ज्ञान अब हमें हो गया है ।

हे करुणा के सागर ! कण्ठ की प्यास पानी से बुझ जाती है परन्तु पेट की भूख पानी से नहीं शान्त होती उसके लिए भोजन करना पड़ता है । भोजन से पेट की अग्नि तो शान्त हो जाएगी, किन्तु शरीर का नंगापन भोजन से दूर नहीं होगा उसके लिए कपड़े पहनने पड़ते हैं । कपड़ों से शरीर का नंगापन दूर हो जायेगा किन्तु सर्दी-गर्मी-वर्षा से, पशु-पक्षी, चोरों से बचने के लिए भवन चाहिए, इस प्रकार भूमि, भवन, पत्नी-पुत्र, मित्र-साथी, गुरु, आचार्य, सेवक, धन-सम्पत्ति आदि सभी मिलकर कदाचित् शारीरिक-ऐन्द्रियिक-मानसिक आवश्यकताओं की पूर्ति कर भी दें, किन्तु आत्मा की प्यास तो प्रभुदेव ! आपके ही सान्निध्य में आकर बुझती है ।

हे प्रभो ! आनन्द के सागर, कितना आश्चर्य है कि आपमें मैं हूँ और मेरे में आप हैं फिर भी मैं अतृप्त, अशान्त, व्याकुल हूँ, दुःखी हूँ । हे करुणाकर ! दया करके वह ज्ञान, सामर्थ्य, योग्यता प्रदान करो कि आप के आनन्दामृत का पान करके मैं कृतकृत्य हो जाऊँ ।

★ ★ ★

(१४)

न पापासो मनामहे नारायासो न जळ्हवः ।
यदिन्विन्द्रं वृषणं सचा सुते सखायं कृणवामहै ॥

(ऋग्वेद ८/६१/११)

शब्दार्थ :- न पापासः मनामहे = न तो दुष्कर्मी बनकर उस ईश्वर के उपासक बन सकते हैं । **न अरायस** = न दान आदि कर्मों से रहित होकर **न जल्हव** = सेवा परोपकारादि श्रेष्ठ कर्मों से रहित होकर **यद् इत् नु** = इसलिए निश्चय से ही **इन्द्रम् वृषणम्** = ऐश्वर्यप्रदाता , सुखों की वर्षा करने वाले इन्द्र को **सुते सचा** = यज्ञादि उत्तम कर्मों से युक्त होकर **सखायम्** = मित्र **कृणवामहै** = बनाना चाहिए ।

भावार्थ :- यथार्थ ज्ञान के अभाव में शरीर, मन तथा वाणी से ईश्वर, वेद, शास्त्र, ऋषियों की आज्ञाओं के विरुद्ध दुष्कर्मी बनकर हम ईश्वरभक्त नहीं बन सकते हैं । ईश्वर का सच्चा उपासक बनने के लिए तो उसका मित्र बनना पड़ता है, सच्चा मित्र वही बन सकता है जो ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव अनुसार अपने विचारों, वाणियों व क्रियाओं को बनाता है ।

आज अधिकांश ईश्वर-उपासकों, ईश्वरभक्तों, ईश्वरविश्वासियों की स्थिति यह है कि वे प्रातः काल कुछ काल के लिए किसी स्थान विशेष में जाकर, किसी विग्रह आदि के समक्ष उपस्थित होकर, हाथ जोड़ते हैं, दीप जलाते हैं, पत्र-पुष्प, जल, दुग्ध, मिष्ठान्नादि पदार्थों को अर्पण करते हैं, दो चार मन्त्र, श्लोक, पद्य, गीत का उच्चारण करते हैं, परिसर के बाहर १-२ फेरी लगाते हैं और उस धार्मिक परिसर से बाहर निकलकर ऐसा मानते हैं कि मैंने ईश्वर की उपासना कर ली, पूजा कर ली है, उसका ध्यान कर लिया है और घर पर लौटकर, दूकान में, कार्यालय में, विद्यालय में, न्यायालय में, कारखाने में या किसी क्षेत्र में जहाँ वे कार्य करते हैं, बिना झिझक के झूठ बोलते हैं, मिलावट करते हैं, हेराफेरी करते हैं, छल-कपट करते हैं, रिश्वत लेते-देते हैं, पक्षपात-अन्याय करते हैं । इतना ही नहीं

कुछ तो पशु-पक्षियों के मांस को खाते हुए अपने आपको ईश्वरभक्त मान रहे हैं । शराब, भांग, तम्बाखू, हेरोइन, कोकेन आदि नशीली वस्तुओं का सेवन करते हुए अपने को आस्तिक मान रहे हैं । जुआ खेलते हुए, डाका डालते हुए, बलात्कार, हत्याएँ, शोषण करते हुए और भी अनेकानेक समाज, राष्ट्रघाती जघन्य, कुकर्मों को करते हुए अपने को ईश्वरभक्त मानते हैं । कैसी विचित्र विडम्बना है कि ऐसे दुष्कर्मी, कुकर्मी, हिंसक, पिशाच, दैत्य भी अपने को धार्मिक, ईश्वर-उपासक, आस्तिक मानते हैं ।

इस मन्त्र में कहा गया है कि जो मनुष्य उपर्युक्त पापयुक्त कर्मों को करते हैं या सेवा, परोपकार आदि से रहित हैं, मात्र अपनी ही सुख-सुविधाओं को बढ़ाने भोगने में लगे हुए हैं और जो अग्निहोत्र आदि सामाजिक, सर्वहितकारी कार्यों से रहित हैं, वे भी ईश्वर के भक्त नहीं हो सकते । उनको ईश्वर से ज्ञान, बल, आनन्द, शान्ति, सन्तोष, स्वतन्त्रता आदि गुण प्राप्त नहीं हो सकते । मात्र दो-पाँच-दस पल की किसी धार्मिक क्रिया को कर लेने से, ईश्वर अपने सुखों की वर्षा ऐसे भक्तों पर नहीं करता है । इसके लिए तो प्रातःकाल जागने से लेकर रात्रि=सोने पर्यन्त सतत ईश्वर का मन में स्मरण रखना पड़ता है और जैसा-जैसा ईश्वर ने वेद में निर्देश किया है, ऋषियों ने अपने ग्रन्थों में संकेत किया है उसी के अनुसार समस्त कर्मों को करना पड़ता है । दुनिया के अनुसार चलने वाला और अपनी मन-मर्जी से कर्मों को करने वाला व्यक्ति ईश्वर का मित्र नहीं बन सकता है, अपितु जैसा ईश्वर ने कहा है, वैसा ही प्रमाणिक होकर कर्म करने वाला व्यक्ति ईश्वरभक्त बनता है ।

जो व्यक्ति आध्यात्मिक अज्ञान से ग्रस्त होते हैं जिनके मन, बुद्धि, आत्मा आदि हिंसा, स्वार्थ, झूठ, छल-कपट, प्रमादादि अशुभ कर्मों से युक्त होते हैं और जो यज्ञ, दान, सेवा, परोपकार आदि शुभ कर्मों से रहित है ऐसे व्यक्ति कभी भी ईश्वरीय, अलौकिक आनन्द, शान्ति , निर्भीकता आदि को प्राप्त नहीं कर सकते हैं, ऐसा हमने स्पष्ट अनुभव किया है इसलिए अब तो आपसे यही हमारी प्रार्थना है कि हमें अपना सच्चा मित्र बना लो ।

अब हम आपके सर्वथा अनुकूल ही चलेंगे । हम नित्य प्रति आदर्श, वैदिक दिनचर्या का पालन करेंगे । ब्राह्म मुहूर्त में जागरण, भ्रमण, व्यायाम करेंगे, स्नान आदि करके आपका ध्यान करेंगे, यज्ञ करेंगे, वेदपाठ करेंगे, शास्त्रों को स्वाध्याय करेंगे, संन्यासी, विद्वान्, ब्राह्मण, सामाजिक कार्यकर्त्ताओं को दान करेंगे, सात्त्विक भोजन करेंगे, सादे सरल वस्त्र पहनेंगे, झूठ, छल-कपट, निन्दा-चुगली का व्यवहार नहीं करेंगे । न केवल परिवार के सदस्यों के साथ अपितु पड़ौसी, मित्र, गली, समाज, नगर, गाँव के व्यक्तियों के कल्याण के लिए तन-मन-धन का सहयोग देकर उनको भी उन्नत बनायेंगे । हे इन्द्र ! हमें सच्चा मानसिक, आत्मिक, ऐश्वर्य प्रदान करो, मन में हर पल सुख-शान्ति-निर्भीकता बनी रहे, ऐसी हमारी स्थिति बनाओ, प्रभुदेव ! इसी आशा के साथ आपकी शरण में आये हैं ।

★ ★ ★

(१५)

अश्वत्थे वो निषदनं पर्णे वो वसतिष्कृता।
गोभाजऽइत्किलासथ यत्सनवथ पूरुषम् ॥ (यजुर्वेद ३५/४)

शब्दार्थ :- अश्वत्थे = अस्थिर-अनिश्चित शरीर में **वः** = तुम जीवों का **निषदनम्** = निवास है **पर्णे** = पत्ते पर (ओस की बूँद के समान) **वः** = तुम्हारा घर **वसतिः** = आवास **कृता** = बनाया है **गोभाज इत् किल असथ** = तुम तो मात्र इन्द्रियों का विषय सेवन करने वाले ही बन गये हो **यत्सनवथ पूरुषम्** = जबकि तुम्हें अस्थिर शरीर में, स्थिर आत्मा परमात्मा की भक्ति करनी चाहिए ।

भाावार्थ :- एक ऐसा शाश्वत नित्य नियम है जिसे प्राय: व्यक्ति भूल जाता है, भूला ही रहता है, वह है शरीर की अनित्यता-अनिश्चितता-अस्थिरता । प्राय: ऐसा अज्ञान बना रहता है कि मैं आज जैसा हूँ वैसे ही स्वस्थ, शक्तिशाली, सम्पन्न, सुखी, सन्तुष्ट बना रहूँगा, कभी बूढ़ा नहीं होऊँगा, कुरूप नहीं होऊँगा, रोगी नहीं होऊँगा, न मरूँगा, ऐसे मिथ्या ज्ञान के कारण अभिमान की वृद्धि होती है और व्यक्ति अनिष्टों को अधिक मात्रा में करता है ।

यह मृत्यु ऐसी वस्तु है जिसे कोई भी नहीं चाहता, न इसके विषय में सुनना चाहता है, न पढ़ना, न विचारना, न देखना, किन्तु साये की तरह यह प्रत्येक मनुष्य के पीछे लगी रहती है । सारे वैज्ञानिक इस प्रयास में लगे हैं कि किसी भी प्रकार इस जीवन को लम्बा किया जाये, जवान ही बनाये रखा जाये, बल्कि शरीरों को अमर बना लिया जाये । अनेक धनाढ्य व्यक्तियों के शव शीतक यन्त्र (फ्रिज) में वर्षों से रखे हैं । उन अरबपतियों ने अपनी सम्पत्ति वैज्ञानिकों को प्रदान कर दी इसलिये कि वे पुन: चेतनता को खोजकर या निर्माण करके उन्हें जीवित कर देंवे, कैसी असम्भव कल्पना है ? वैदिक / आध्यात्मिक-दार्शनिक दृष्टि से मनुष्य का सबसे बड़ा अज्ञान यह है कि मैं सदा शरीर के साथ संसार में जीवित रहूँगा, मरूगाँ नहीं । आश्चर्य तो तब प्रतीत होता है जब व्यक्ति स्वयं अपने

जीवन में सैकड़ों-हजारों व्यक्तियों को प्रतिदिन मरता हुआ देखता है, अनेकों को तो वह स्वयं अपने कन्धों पर उठाकर श्मशान ले जाकर जलाता है किन्तु अपने विषय में यह मानता है कि मैं नहीं मरूँगा ।

यमराज परमेश्वर ने वेदों में भी अनेकत्र मनुष्यों को यह चेतावनी दी है कि हे मनुष्य तू सावधान होकर चल, तेरा जीवन पतझड़ ऋतु में, पीपल के पके हुए पीले पत्ते के समान अस्थिर है, जो न जाने कब हवा के झोंके से डाली से अलग हो जाये । इतना ही नहीं एक दृष्टान्त और भी अस्थायित्व का दिया है जो व्यक्ति को अत्यन्त सतर्क सावधान और क्रियाशील बना देता है । वेद कहता है कि जैसे शीत ऋतु में रात्रि काल में पेड़ के पत्ते पर ओस की बूँद बन जाती है और वह तब तक पत्ते पर चमकती रहती है जब तक पत्ता हिलता-डुलता नहीं है । ज्यों हि कभी वायु का एक हलका झोंका पत्ते को हिलाता है, तत्काल वह ओस की बूँद धड़ाम नीचे गिर जाती है, ठीक वैसे ही कब, कहाँ, किस घटना के घटने पर प्राण शरीर से निकल जाये, कहा नहीं जा सकता है । इतनी क्षणभंगुरता शरीर की है । शरीर का अर्थ ही यह है जो कभी किसी दिन ठण्डा हो जायेगा कट जायेगा, जल जायेगा, नष्ट हो जायेगा ।

इसलिये ईश्वर हमें वेद मन्त्र के माध्यम से चेतावनी देता है कि हे भोले मनुष्य ! ऐसे अनित्य क्षणभंगुर शरीर को प्राप्त करके तुम केवल इन्द्रियों की विषय तृप्ति में ही नीरत हो गये हो , मात्र साढ़े चार-पाँच इंच के पेट को भरने और पांच-छ: फीट लम्बे शरीर को सजाने संवारने, खिलाने-पिलाने में ही दिन-रात लगे रहते हो, याद रखो जो मात्र इन्द्रियों की तृप्ति में ही लगा रहता है उसकी विषय तृष्णाएँ घटने के बजाए बढ़ती ही जाती हैं । भोगासक्त मनुष्य की बुद्धि सतत रजोगुणी, तमोगुणी बनती चली जाती है, मन में अशान्ति, चंचलता, राग-द्वेष की प्रवृत्ति भी बढ़ती जाती है परिणामस्वरूप विषयभोगी व्यक्ति मात्र शिश्नोदर पारायण बनकर अधार्मिक प्रवृत्ति वाला, आलसी, प्रमादी, अकर्मण्य, स्वार्थी बन जाता है और आगे चलकर आत्मतत्त्व के विश्वास को खोकर नास्तिक बनकर जघन्य क्रूर कर्मों को भी प्रारम्भ कर देता है । ऐसा जघन्य असुर व्यक्ति अपने

जीवन को तो नष्ट-भ्रष्ट करता ही है बल्कि अपने निकृष्ट जीवन से परिवार, समाज, राष्ट्र, विश्व के जीवन को भी नरकसागर में डुबा देता है ।

हे प्रभो ! हमको अब आपके वेद के स्वाध्याय से यह बोध हो गया है कि मात्र शरीर इन्द्रियों की तृप्ति करना तो पशुवृत्ति है इससे सन्तुष्टि नहीं होगी । अब हम इस नश्वर, विकारी, परिणामी, वियोगी व दुःखों के आधार शरीर, इन्द्रियों की ही पूजा नहीं करेंगे अपितु आत्मतत्त्व को जानेंगे । आत्मबोध से समस्त शरीर मन इन्द्रियों व विषयभोगों के संस्कारों पर नियन्त्रण करेंगे समस्त अनिष्ट अधार्मिक, अप्रामाणिक, निषिद्ध, दुःखदायी कर्मों का नितान्त त्याग करके आत्मा को पवित्र बनायेंगे और आपका भी साक्षात्कार करेंगे । हे ब्रह्माण्ड के उत्पत्तिकर्त्ता, रक्षक, पालक, जीवों के कर्मफल दाता, ज्ञानगुरु प्रभुदेव ! आप ही कृपा करो कि हम आपके स्वरूप को जानकर आपकी अनुभूति करके समस्त दुःखों से बच जायें और आपके परमानन्द के भागी बनें । हे पिता ! हम सच्चे हृदय से आपको चाहते हैं, आपकी आज्ञा का पालन करते हैं, हमारे ऊपर दया करके अपना ज्ञान-बल-आनन्द प्रदान करके कृतार्थ करो, कृतार्थ करो ।

★ ★ ★

(१६)

अस्मात्त्वमधि जातोऽसि त्वदयं जायतां पुनः ।
असौ स्वर्गाय लोकाय स्वाहा ॥ **(यजुर्वेद ३५/२२)**

शब्दार्थ :- अस्मात् = इस यजमान से **त्वम्** = तू अग्निदेव **अधिजातः** = उत्पन्न/प्रकट **असि** = हुआ है/होता है **त्वद्** = तुझ से **अयम्** = यह याज्ञिक **जायताम्** = उत्पन्न हो **पुनः** = फिर **असौ** = जिससे यह यजमान **स्वर्गाय लोकाय** = स्वर्ग-मोक्ष सुख के लिए अधिकारी/पात्र बन जाये **स्वाहा** = इस हेतु से हमने यह आहुति दी है ।

भावार्थ :- हे अग्निदेव ! इस यज्ञकर्त्ता ने '**भूर्भुवःस्वः**' कहकर तुझे प्रकाशित किया है तुझे बढ़ाया है, प्रखर किया है, तीव्र बनाया है अब तेरा काम है कि इस यज्ञकर्त्ता यजमान को प्रकाशित कर, इसे नये विचार, नई प्रेरणा, नया जीवन प्रदान कर । इसका जीवन अज्ञान, अधर्म, अशान्ति, आशंका, भय, भ्रम तथा दुःख से रहित हो जाये, यह यज्ञकर्त्ता जीवन पथ पर चलते हुए सभी प्रकार की न्यूनता, अभाव, संशय, बाधा, बन्धन, पीड़ा से रहित होकर सर्वदा, सर्वथा, सर्वत्र सुखी ही रहे ऐसा सामर्थ्य, शक्ति, साहस, बल, पराक्रम इसे प्रदान करो ।

हे अग्निदेव ! हमने पुरुषार्थपूर्वक निरन्तर १०-२०-३० वर्ष तक प्रतिदिन प्रातः सायं तुझे प्रकट किया किन्तु हमारे अन्तःकरण में प्रकाश की कुछ भी किरणें नहीं फूटी तो हमारे यज्ञ का परिणाम क्या आया ?

हे वह्निदेव ! वर्षों तक हजारों बार 'स्वाहा', 'स्वाहा' शब्द का उच्चारण करते हुए यज्ञकुण्ड में घृत की आहुतियाँ प्रदान की किन्तु जीवन में त्यागवृत्ति का प्रादुर्भाव नहीं हुआ तो क्या प्रभाव हुआ इस स्वाहाकार का ?

हे यज्ञाग्ने ! जीवन का एक बहुत बड़ा भाग प्रातःकाल की उत्तम बेला में प्रक्षेप को आहुत करते हुए ''इदन्न मम'' वाक्य का उच्चारण किया किन्तु इन लौकिक जड़-चेतन पदार्थों के प्रति स्व-स्वामिसम्बन्ध ढीला नहीं हुआ तो क्या अर्थ हुआ ''इदन्न मम'' का ?

हे दिव्याग्ने ! यज्ञ में समिधाओं का चयन करके तेरी लपटों को आकाश में पहुँचा दिया किन्तु हमारा जीवन तो स्वार्थ की तुच्छ भावनाओं से किञ्चित् मात्र भी ऊपर नहीं उठा तो क्या तात्पर्य हुआ ज्वालाएँ बढ़ाने का ?

हे पवित्राग्ने ! घृतादि द्रव्यों को समर्पित करके आपको संतृप्त स्वरूप किया, सारे हव्य शाकल्य जल गये किन्तु आपके ताप ने हमारे चित्त में जन्म-जन्मान्तर के विद्यमान अविद्याजनित प्रसुप्त, तनु, विच्छिन्न तथा उदार कुसंस्कारों को प्रदग्ध नहीं किया तो क्या सान्निध्य रहा इस ताप का ?

हे पावकाग्ने ! प्रक्षिप्त सुगन्धित पदार्थों के जलने पर उठने वाली सुरभित वायु ने हमारे जीवन को सद्‌गुणों से सुगन्धित नहीं बनाया तो क्या परिणाम आया इन आहुतियों का ?

हे तापकाग्ने ! हिमालय की उपत्यकाओं से चुनकर लाई गई इन विशिष्ट रोग निवारक औषधियों को प्रदग्ध करने पर हमारे शारीरिक, मानसिक रोगों का विनाश नहीं हुआ तो क्या फल निकला यज्ञ का !

हे भव्याग्ने ! मधु, द्राक्षादि मिष्ट पदार्थों को जलाने पर भी हमारे जीवन व्यवहार में मधुरता, सरलता, विनम्रता आदि गुणों से निखार नहीं आया तो क्या लाभ हुआ यज्ञ का ?

हे अध्वराग्ने ! घृत आदि पुष्टिकारक पदार्थों की आहुति देने पर भी यदि हमारे शरीर कृश, कुरूप, विकृत व निर्बल बने रहे वे रूपवान्, लावण्य युक्त, आकर्षक, पुष्ट, सबल नहीं बने तो क्या महत्त्व रहा इस त्याग का ?

हे देव ! मात्र काष्ठों को जलाकर उसमें घृत शाकल्य को डालकर जलवायु को / पर्यावरण को पवित्र करने के लिए जड़-पूजा करना ही मेरा उद्देश्य नहीं था मेरी तो भावना उच्च थी । मैं तो अपने हृदय में अपने आत्मा को ही समिधा बनाकर आपकी आज्ञाओं का पालन रूपी आहुतियों से प्रज्वलित करना चाहथा था । मैं अपने आत्मस्वरूप को जानना चाहता हूँ इसे प्रकाशित करना चाहता हूँ यह भौतिक अग्नि जैसे शाकल्य को जलाकर राख बना देती है वैसे ही मैं अपने पापों को, दोषों को, कुवासनाओं को

जलाकर दग्धबीजभावरूप में बना देना चाहता हूँ । जैसे यह यज्ञाग्नि आसपास के अन्धकार को दूर करके प्रकाश फैला देती है वैसे ही स्वयं को प्रकाशित करके पुरुषार्थी, त्यागी, तपस्वी, तेजस्वी, ऊर्ध्वारोही बनाना चाहता हूँ । जैसे यज्ञ में प्रक्षिप्त घी से अग्नि प्रज्वलित होती है वैसे ही मैं **'आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्तिं द्रविणं ब्रह्मवर्चसम्'** से आलोकित होना चाहता हूँ । इन सबकी प्राप्ति के बिना तो मेरा यज्ञ अधूरा है ।

हे प्रभुदेव ! अब मैं देवयाजी के साथ साथ आत्मयाजी भी बनना चाहता हूँ बाहरी वातावरण के साथ साथ अन्तःकरण को भी पवित्र, सुरभित, प्रकाशित, प्रखर करना चाहता हूँ । आओ अग्नि देव ! मेरे अन्तःकरण में आओ, मेरी इस गीली, दुर्गन्धयुक्त, धुएँदार आत्मसमिधा को जलाओ, इसे अपने ज्ञान-बल-आनन्द आदि गुणों से प्रज्वलित करो । मेरे समस्त अज्ञान, आलस्य, प्रमाद, स्वार्थ, विषयासक्ति, नास्तिकता आदि अवगुणों को नष्ट करो । हे दिव्याग्ने ! मेरा यज्ञ तो तभी पूरा होगा जब मैं समस्त अज्ञानान्धकार से रहित होकर समस्त बन्धनों-दुःखों से पृथक् होकर आपके सान्निध्य में मोक्षरूपी स्वर्ग का अधिकारी बनूँगा तभी मेरा **'सर्वं वै पूर्णं स्वाहा'** होगा । जब तक यह स्थिति न आयेगी तब तक मेरा यज्ञ अधूरा हे देव ! आप ही मेरे यज्ञ को पूरा करो आपकी सहायता के बिना मुझ अकेले से यह पूरा होना सम्भव नहीं है ।

★ ★ ★

(१७)

विश्वो देवस्य नेतुर्मर्तो वुरीत सख्यम् ।
विश्वो रायऽइषुध्यति द्युम्नं वृणीत पुष्यसे स्वाहा ॥

(यजुर्वेद २२-२०)

पदार्थ :- **विश्वः** = सब **मर्तः** = मनुष्य लोग **देवस्य** = दिव्य गुण वाले **नेतुः** =नेता की **सख्यम्** = मित्रता का सम्बन्ध बनायें **विश्वः** = सभी मनुष्य **राये** = केवल धन सम्पत्ति के लिए ही **इषुध्यति** = तीर चला रहे हैं । जबकि मनुष्यों को चाहिए की वे **द्युम्नम्** = ईश्वर की प्रसन्नता-आनन्द की **वृणीत** = प्राप्ति के लिए प्रयास करें **पुष्यसे** = आत्मा की पुष्टि के लिए **स्वाहा** = त्याग करें, तप करें ।

भावार्थः- परमपिता परमेश्वर ने इस वेदमन्त्र के माध्यम से यह आदेश दिया है कि धरती पर रहने वाले सभी मरणधर्मा मनुष्य दिव्य गुण-कर्म-स्वभाव वाले और सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का निर्माण, रक्षण, पालन, पोषण, संचालन करने वाले ईश्वर की प्राप्ति का लक्ष्य बनायें, उसी को अपना गुरु, आचार्य, निर्देशक, पथ-प्रदर्शक, स्वामी बनायें । उसी के साथ अपनी घनिष्ठ मित्रता बनायें क्योंकि वही मनुष्यों को सब इच्छित पदार्थों को देने वाला है । मनुष्यों की हर शुभ कामना की पूर्ति करने वाला, उसमें साधन बनने वाला, प्रेरक बनने वाला, उत्साहित करने वाला, साहस, पराक्रम देने वाला वही सर्वव्यापक, निराकार, सर्वज्ञ, दयालु ईश्वर है । जीवों का इतना अधिक हितैषी और कोई नहीं है ।

लेकिन आज का मनुष्य सारी शक्ति, सारा समय, सारी बुद्धि, सारा अवसर, मात्र भौतिक साधनों को प्राप्त करने में ही लगा रहा है या जिन धन, रुपयों से वे साधन प्राप्त होते हैं, उन्हीं को प्राप्त करने में लगा रहा है । आज के मनुष्यों के मन, बुद्धि में यह मिथ्या ज्ञान घर कर गया है कि मात्र अधिकाधिक धन-सम्पत्ति, भौतिक साधनों को प्राप्त करके, उनको भोग करके मैं पूर्ण सन्तुष्ट, सुखी, शान्त, प्रसन्न, निर्भीक व स्वतन्त्र बन जाऊँगा । मात्र धन-सम्पत्ति के ही पर्याप्त संग्रह से मेरे सारे दुःख, कष्ट,

अभाव, भय, चिन्ताएँ दूर हो जायेंगे किन्तु ऐसा नहीं है । प्रत्यक्षरूप से भी देखा जाये तो यह स्पष्ट अनुभव में आ जायेगा कि जिन धनिकों के पास बहुत मात्रा में धन-सम्पत्ति साधन हैं वे भी पूर्ण रूप से दुःखों से रहित नहीं हैं। उनको भी कभी न कभी, कहीं न कहीं, किसी न किसी विषय से सम्बन्धित दुःख आ घेरता है । वे भी खिन्न, असन्तुष्ट, चिन्तित हो जाते हैं ।

अतः इस मन्त्र में निर्देश किया है कि हम मनुष्य धन-सम्पत्ति यथा आवश्यकता कमाएँ किन्तु मुख्यरूप से ईश्वर की प्रसन्नता को हम चाहें, ईश्वर के आनन्द को प्राप्त करने हेतु हम पूर्ण पुरुषार्थ करें । उसकी प्रसन्नता उसकी आज्ञा, निर्देशों, विधि-विधानों, अनुशासनों का पालन करने से उत्पन्न होती है अर्थात् वेद में प्रभु ने जो आदेश किया है और जिनकी व्याख्या ऋषियों ने अपने शास्त्रों में की है उनका पालन हम रुचि, श्रद्धा, निष्ठा, तप, त्याग व पुरुषार्थ के साथ करें और आत्मा में जो जन्म-जन्मान्तर के अविद्याजनित काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, स्वार्थ, आलस्य-प्रमाद आदि के संस्कार हैं उनको नष्ट करके अपने जीवन को निर्मल पवित्र बनायें । आत्मा की चेतनता और उसके कर्त्तव्य कर्म की स्थिति का बोध करें । व्रत-संकल्प लेकर आत्मा को श्रेष्ठ गुणों से युक्त करें । तभी सम्पूर्ण दुःखों से छूटकर पूर्णानन्द की प्राप्तिरूप जीवनलक्ष्य पूरा हो सकता है । अन्यथा केवल मात्र धन के ही संचय में लगे रहे तो अन्त में पश्चात्ताप, ग्लानि, दुःख व कष्ट के सिवाय कुछ भी हाथ नहीं लगेगा ।

इसलिए आओ मित्र, बन्धुओ ! उस महान् ज्ञान- बल- आनन्द के भण्डार परमेश्वर को ही अपना परम मित्र बनाकर जीवन को सफल करें।

★ ★ ★

(१८)

परि माग्ने दुश्चरिताद्बाधस्वा मा सुचरिते भज ।
उदायुषा स्वायुषोदस्थाममृतामनु ॥ **(यजुर्वेद ४/२८)**

पदार्थ :- अग्ने = हे दयालु ईश्वर ! **मा** = मुझे **परि** = सब ओर से हर प्रकार की **दुश्चरितात्** = बुराइयों से **बाधस्व** = रहित कर दो और **मा** = मुझे **आसुचरिते** = सब प्रकार के उत्तम कार्यों के लिए **भज** = प्रोत्साहित करो **आयुषा** = इसी जन्म में **स्वायुषा** = इस जीवन को श्रेष्ठ बनाकर **उदस्थाम्** = सफलता को प्राप्त करूँ । **अमृताम्-अनु** = और विद्वानों, योगियों का अनुकरण करके मरणरूपी दु:ख से छूटकर मोक्ष को प्राप्त करूँ।

भावार्थ :- प्रत्येक मनुष्य अपने जीवन को शान्त, सन्तुष्ट, सुखी, निर्भीक, स्वतन्त्र बनाना चाहता है । किन्तु यह तभी सम्भव है जब वह सभी बुरे कर्मों से बचे और अच्छे कर्मों को ही करे। बुरे कर्मों से बचना व अच्छे कर्मों को करना तभी सम्भव है जब वह उच्च स्तर के योगीजनों के सान्निध्य से उच्च स्तर की आध्यात्मिक विद्या को पढ़े , समझे और तदनुसार आचरण करे। धर्मयुक्त उत्तम व्यवहारों को करने से ही मनुष्य का जीवन उत्कृष्ट बनता है और वह अन्तिम लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है। इसी लक्ष्य को प्राप्त करने हेतु मन्त्र में प्रार्थना की गई है कि हे प्रभुदेव ! मैंने यह अच्छी तरह से समझ लिया है कि अपने जीवन को उन्नत बनाने में अन्य कोई नहीं, मैं स्वयं ही बाधक बना हुआ हूँ। मेरे कुत्सित विचार, अशिष्ट वाणी और दुष्टाचरण ही प्रगति में मुख्य बाधक हैं । अज्ञान-मूर्खता के कारण मैं अन्यों को बाधक मानता आया हूँ। मेरा स्वयं का असत्याचरण, छल, कपट, अन्याय, स्वार्थ आदि ही जीवन को शान्त, सुखी बनाने में बाधक बने हुए हैं । मैं अनेक बार चाहता हूँ कि मैं इन सब कुत्सित आचरणों को समाप्तकर दूँ किन्तु मेरे वश में नहीं है । मैं बार-बार संकल्प करता हूँ किन्तु इन कुसंस्कारों के प्रबल होने के कारण वे संकल्प टूट जाते हैं, मैं उनका दृढ़ता से पालन नहीं कर पाता हूँ ।

मिथ्याभिमानी बनकर एषणाओं से लिप्त होकर विवेक खो देता हूँ और अच्छे-बुरे, सत्य-असत्य, धर्म-अधर्म, कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य का निर्णय नहीं कर पाता हूँ या भावावेश में उल्टा निर्णय कर लेता हूँ ।

इसलिए अब तो मैं आपकी ही शरण में आया हूँ। आप ही मुझे प्रतिपल प्रत्येक कार्य के प्रारम्भ में यह बोध करावें कि उचित- अनुचित क्या है ? आप ही दुरित से बचाकर सुचरित की ओर प्रेरित कीजिए । इतना ही नहीं मन में इतना साहस, बल, पराक्रम भर दो कि कितने ही दारुण कष्ट मुझे भोगने पड़े किन्तु मैं दुरित को कदापि स्वीकार न करूँ। असत्य, अन्याय, अधर्म की ओर कदापि न झुकूँ । सदा सत्य, धर्म और न्याय का ही आचरण करता रहूँ ।

हे सर्वविघ्न विनाशक प्रभुदेव ! मैंने बहुत लम्बा जीवन खो दिया इन्हीं दुरितों में क्षणिक सुखों का सेवन करते हुए । अब यह बोध हुआ है, अन्तः प्रेरणा मिली है कि इन सब दुरितों को नष्ट करना ही चाहिए और मैं ऐसा कर भी सकता हूँ। आज हृदय से यह प्रार्थना कर रहा हूँ कि मुझे पवित्र बनाओ, उत्तम बनाओ, आनन्दित करो । मैं भी समस्त अविद्या को दग्धबीजभाव बनाकर इसी जीवन में 'जीवनमुक्त' होकर निर्भीक, सन्तुष्ट व स्वतन्त्र बन जाऊँ और आपका सान्निध्य प्राप्त कर लूँ ।

★ ★ ★

(१९)

उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवान् यज्ञेन बोधय ।
आयुः प्राणं प्रजां पशून् कीर्तिं यजमानं च वर्धय ॥

(अथर्ववेद १९/६३/१)

पदार्थ :- उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते = हे ज्ञान के स्वामी विद्वान् ! खड़ा हो जा **देवान्** = देवों को, शुभ गुणों को, संस्कारों को **यज्ञेन** = यज्ञ से- पुरुषार्थ, तपस्या, त्याग, संकल्प से **बोधय** = जगा और **आयुः** = लम्बे जीवन को **प्राणम्** = प्राणशक्ति-बल को **प्रजाम्** = सुसन्तानों को **पशून्** = गाय आदि पशुओं को **कीर्तिम्** = यश-प्रतिष्ठा को **यजमानम् च** = और श्रेष्ठ कर्म करने वाले यजमानों की धन-सम्पत्ति को **वर्धय** = बढ़ा ।

भावार्थ :- मन्त्र में ब्राह्मण को उद्बोधन किया गया है। ब्राह्मण कौन है ? वैदिक परम्परा में वेदों को जानने वाला ब्राह्मण होता है । ईश्वर के प्रति अनन्य श्रद्धा रखने वाला ब्राह्मण होता है । आत्मिक शक्ति सम्पन्न व्यक्ति ब्राह्मण होता है । समाज, राष्ट्र, विश्व स्तर के कल्याणकारी महान् कार्यों को करने वाला ब्राह्मण होता है। ऐसे ब्राह्मण को कहा गया है कि हे ब्राह्मण ! तू उठ खड़ा हो जा , सतर्क-सावधान हो जा , व्रत-संकल्प को धारण कर। किस कार्य का संकल्प ? देवों को यज्ञ से जगाने, बढ़ाने का संकल्प । देव कौन हैं ? प्रसुप्त सुसंस्कार, अन्तःकरण में दबे हुए दिव्य भाव और अलौकिक गुणों को देव कहा गया है । यज्ञ से जगाने का तात्पर्य क्या है ? यज्ञ का तात्पर्य है पुरुषार्थ, तपस्या, त्याग, कष्टसहन, निष्कामता तथा परोपकार की भावना के साथ सूक्ष्म शरीर में विद्यमान शक्तियों को प्रबुद्ध करना । मनुष्य मात्र में जन्म-जन्मान्तर के अच्छे-बुरे संस्कार बने होते हैं । उत्तम माता-पिता, गुरु-आचार्य, विद्वान् समाज, वातावरण आदि के माध्यम से वे दिव्य गुण, संस्कार, भावनायें उद्बुद्ध हो जाती हैं और जिनको इनके विपरीत निष्कृष्ट माता-पिता आदि मिलते हैं, उनके उत्तम गुण तो दबे ही रहते हैं, बुरे गुण, बुरे संस्कार प्रबुद्ध हो

जाते हैं । वे निकृष्ट जीवन वाले बन जाते हैं । यज्ञ के द्वारा प्रसुप्त दिव्य शक्तियों, भावनाओं को प्रबुद्ध करने का परिणाम, प्रभाव, फल यह होता है कि उसकी आयु अर्थात् जीवन काल लम्बा होता है । वह अल्पायु में, छोटी अवस्था में अकाल मृत्यु को प्राप्त नहीं होता है । दीर्घायु १००-२००-३००-४०० वर्ष तक भी जीवित रह सकता है ।

दिव्य शक्तियों के जागृत होने पर न केवल आयु लम्बी होती है अपितु शरीर दृढ़, पुष्ट, लावण्यमय, सुन्दर व आकर्षक भी बनते हैं । प्राणशक्ति के बढ़ने से ही मनुष्य दौड़ने-भागने-खाने-पीने, विचारने, बोलने तथा समस्त व्यवहारों को निर्बाध गति से सम्पन्न कर लेता है । शरीर रोगी, निर्बल, कृश, कुरूप या विकृत नहीं बनता है । यह प्राणशक्ति प्राणायाम करने से बढ़ती है, इसलिए ऋषियों ने नित्यप्रति दो बार प्राणायाम करने का विधान किया है । दिव्य आध्यात्मिक संस्कारों वाला व्यक्ति निश्चित रूप से संयमी, अनुशासनप्रिय, सात्विक भोजन, आदर्श दिनचर्या व आदर्श व्यवहार वाला होता है। ऐसे उत्कृष्ट गुण सम्पन्न व्यक्तियों को ही सुसन्तान की प्राप्ति होती है । विषय-लम्पट, असंयमी, आलसी, प्रमादी, अनादर्श व्यक्तियों को नहीं । अलौकिक शक्ति, बुद्धि सम्पन्न व्यक्ति गाय आदि उत्तम पशुओं का भी पालन करते हैं क्योंकि उत्तम गौओं के ही अमृतरूप दूध, दही, छाछ, मक्खन मलाई, मावा, पनीर, घी आदि से परिवार के सदस्यों के शरीर, मन, बुद्धि पुष्ट, बलवान एवं स्वस्थ होते हैं । निरन्तर गाय के ही दूध आदि का सेवन करने वाले ओजस्वी, तेजस्वी, पराक्रमी, दीर्घायु, शान्त, गम्भीर, धार्मिक व परोपकारी बनते हैं । अधिक अन्न खाने और कृत्रिम रूप से बनाये गये खट्टे-मीठे, चटपटे, तीखे, लावणिक, तैलीय तथा बासी पदार्थों के प्रयोग से तो व्यक्ति अनेक प्रकार के रोगों से ग्रस्त हो जाता है ।

यज्ञ से दिव्य शक्तियों को जगाने वाले मनुष्य की सब प्रकार से उन्नति होने के कारण समाज-राष्ट्र-विश्व में यश कीर्ति, सम्मान एवं प्रतिष्ठा भी बढ़ती है। ऐसा ब्राह्मण ही समाज-राष्ट्र में अपने जैसे चरित्रवान्, सदाचारी,

व आदर्श व्यक्तियों की प्रवृद्धि कर सकता है । वही अपने श्रेष्ठ जीवन को समाज-राष्ट्र के सम्मुख प्रस्तुत करके लोगों में धर्म, संस्कृति, सभ्यता, आचार का प्रचार-प्रसार कर सकता है। आओ वेदानुयायियो ! ईश्वर विश्वासी भक्तजनों ! हम सभी अपने में विद्यमान निहित दिव्य शक्तियों को जगायें और पुनः समाज राष्ट्र में इसकी प्रवृद्धि करें । हे प्रभो ! आप ही हमारे नेता, गुरु, आचार्य तथा निर्देशक बनो और हमारे जीवन को ब्राह्मी शक्तियों से सम्पन्न दिव्य-भव्य बनाओ जिससे हम न केवल अपना उद्धार करें अपितु समाज राष्ट्र को भी उत्कृष्ट बनाने में परमपुरुषार्थ करें ।

★ ★ ★

(२०)

यस्तिष्ठति चरति यश्च वञ्चति यो निलायं चरति यः प्रतङ्कम् ।
द्वौ संनिषद्य यन्मन्त्रयेते राजा तद्वेद वरु णस्तृतीयः ॥

(अथर्ववेद ४/१६/२)

पदार्थः- यःतिष्ठति = कोई मनुष्य खड़ा है **चरति** = या चल रहा है **यः च वञ्चति** = चाहे कोई किसी को ठग रहा है **यो निलायं चरति** = चाहे कोई किसी के पीछे छिप-छिप कर षड़यन्त्र रचता है, डराता है, हंसी उड़ाता है **द्वौ संनिषद्य यत् मन्त्रयेते** = दो मनुष्य कहीं एकान्त में किसी विषय पर गुप्त चर्चा करते हैं **राजा तद्वेद वरुणः तृतीयः** = सर्व प्रकाशक, सर्वश्रेष्ठ, अन्तर्यामी ईश्वर तीसरा वहाँ उपस्थित होता हुआ सब कुछ को जान लेता है ।

भावार्थ :- मनुष्य अधर्म, पाप ,अन्याय तभी करता है जब वह अपने मन में यह ज्ञान बनाये रखता है कि उसे कोई देख, सुन ,जान नहीं रहा है । प्रकाश में प्रायः पाप नहीं होते हैं । चोरी, जारी, डकैती, लूट, मार, धाड़ आदि अधिकांश कार्य रात के अंधेरे में एकान्त में छिपकर होते हैं। पाप करने वालों के मन में यह अज्ञान बना होता है कि वह पकड़ा नहीं जायेगा, उसे दण्ड नहीं मिलेगा, वह बच जायेगा । यह उसकी बड़ी भूल है । हम अपनी चालाकी, चतुराई, सावधानी, सतर्कता तथा होशियारी से चाहे अपने माता- पिता से बच जायें, भाई व बन्धुओं से बच जायें, मित्रों-परिचितों से बच जायें, सारे गांव, नगर, पुलिस, राजा, न्यायाधीश व विश्व से क्यों न बच जायें किन्तु जो सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, सर्वज्ञ परमेश्वर है उससे अपने किसी भी कर्म को छुपा नहीं सकते हैं, वह सब कु छ को जान लेता है । नास्तिकता की यही परिभाषा है कि जो मनुष्य किसी बुरे कर्म को करता हुआ, करते समय, करने के पश्चात् भी अपने मन में यह मिथ्या ज्ञान बनाये रखता है कि मुझे किसी ने देखा नहीं है, मुझे किसी ने जाना नहीं, मुझे कोई दण्ड नहीं दे पायेगा । ऐसा नास्तिक बनकर ही वह झूठ बोलता है, धोखा देता है, विश्वासघात करता है, निन्दा-चुगली

करता है, किसी को धमकाता है, डराता है या ठगता है। किसी को नीचा दिखाने, अपमानित करने, गिराने, हानि करने तथा मारने तक की एकान्त में योजना बनाता है। दो-चार के साथ मिलकर षड़यन्त्र रचता है। यह सब नास्तिकता के अन्तर्गत आते हैं।

यह भोला ,नादान मनुष्य एकान्त में मन में गुप्त मन्त्रणा करते हुए यह भूल जाता है कि हमारे समस्त कर्मों का साक्षी, द्रष्टा, न्यायाधीश, यमराज हमारे साथ ही, हमारे मन में ही बल्कि आत्मा के अन्दर ही विद्यमान है। वह सारे भेद को जान रहा होता है। उससे छिप कर इस विश्व में कोई भी मनुष्य कोई भी कर्म नहीं कर सकता। बल्कि हम तो अल्पज्ञ जीव अपने कर्मों को भूल भी जाते हैं किन्तु उसको तो हमारे प्रत्येक दिन, प्रत्येक घण्टे, प्रत्येक क्षण के कर्मों का ज्ञान होता है। वह तो हमारी पलकें दिन में कितनी बार झपकी इसे भी जानता है। हम कभी भी, कहीं भी, किसी भी कार्य को करते हुए यह न मानें कि मैं अकेला हूँ। हम हमेशा यही मानें कि मेरे साथ ईश्वर है हम दो हैं। कभी दो व्यक्ति चर्चा कर रहे हों तो यह मानें कि हम दो नहीं बल्कि तीन हैं अर्थात् भगवान् को सर्वदा-सर्वथा अपने साथ मानें।

इसलिए आओ आस्तिक भाइयो, धार्मिक बन्धुओ, ईश्वरविश्वासी मित्रो! यदि दुःखों से बचना है तो कर्मों के करते समय यह दृढ़ विश्वास रखें कि परमपिता परमेश्वर हमारा अन्तर्यामी बना हुआ है। कर्मों को वेदादिशास्त्रों से प्रमाणित करें कि ये उचित ही हैं, सत्य ही हैं, कर्त्तव्य ही हैं। ऐसा निश्चय करके बुरे कर्मों का त्याग करें और अच्छे कर्मों को ही करें। क्योंकि परमेश्वर का नियम है कि अच्छे कर्मों का फल सुख व बुरे कर्मों का फल दुःख अवश्य ही देगा चाहे हम कर्मों को एकान्त में करें या अन्धेरे में या छिपकर करें वह सब का साक्षी है। इसलिए यही उचित लाभकारी है कि हम सदा श्रेष्ठ, धार्मिक व परोपकारी कर्मों को ही करें और बुरे कर्मों से बचें।

★ ★ ★

(२१)

इन्द्र श्रेष्ठानि द्रविणानि धेहि चित्तिं दक्षस्य सुभगत्वमस्मे।
पोषं रयीणामरिष्टिं तनूनां स्वाद्मानं वाचः सुदिनत्वमह्नाम्॥

(ऋग्वेद २/२१/६)

पदार्थ :- इन्द्रः = सर्व ऐश्वर्य सम्पन्न ईश्वर **अस्मे** = हमें **श्रेष्ठानि** = उत्तम **द्रविणानि** = धनों को **धेहि** = दे **चित्तिम्** = ज्ञान को **सुभगत्वम्** = सौभाग्य को **रयीणाम् पोषम्** = साधनों की वृद्धि को **तनूनाम्** = शरीरों की **अरिष्टिम्** = निरोगता को **वाचः** = वाणी की **स्वाद्मानम्** = मधुरता को **अह्नाम्** = दिनों को **सुदिनत्वम्** = अच्छा बना।

भावार्थ :- हे प्रभुदेव! हमें ऐसा धन दो जो हमें समस्त ऐश्वर्यों को प्राप्त करा दे। रुपया, पैसा, सोना, चांदी, हीरा-जवाहरात, भूमि - भवन आदि धन तो हैं किन्तु ये श्रेष्ठ धन नहीं हैं। श्रेष्ठ धन तो कुशाग्र बुद्धि है जिसके माध्यम से मनुष्य अन्य भौतिक धनों को प्राप्त कर लेते हैं। उसी उत्तम बुद्धि से यथा योग्य देश काल परिस्थिति को देखकर शीघ्र निर्णय लिया जाता है। उसी सात्त्विक बुद्धि से व्यवहार काल में धैर्य, गम्भीरता, सहिष्णुता आदि को धारण किया जाता है। उसी मेधा बुद्धि से कार्यों को करते समय मन में श्रद्धा, विश्वास, निष्ठा, उत्साह, आशा, पराक्रम व निष्कामता बनी रहती है। उसी विवेक ख्याति सम्पन्न बुद्धि से कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य, धर्म-अधर्म, न्याय-अन्याय, हानि-लाभ, उचित-अनुचित का बोध होता है। सत्य को स्वीकार करते हैं और असत्य को छोड़ते हैं। ऐसी बुद्धि का प्राप्त होना श्रेष्ठ धन है। ऐसे धन से हमें युक्त करो।

पिछले जन्मों के कर्मों के आधार पर हमें जो देश, जाति, प्रान्त, माता, पिता, शरीर, रंग-रूप, आकार, बुद्धि, समाज-परिवार आदि मिले हैं वह हमारा सौभाग्य है। इसको हम बदल नहीं सकते किन्तु वर्तमान में परमपुरुषार्थ त्याग तथा तप के माध्यम से नये-नये श्रेष्ठ,महान् विशाल कार्यों को करके भविष्य के लिए हम सौभाग्य का निर्माण हम कर सकते हैं। भाग्य कर्मों के अधीन है। उसी का ही परिणाम, प्रभाव, फल है।

हे परमेश्वर ! अब तक तो हमें कम सौभाग्य मिला है उसके लिए शोक न करें रोये नहीं किसी को कोसे नहीं अपितु आगामी जीवन को उत्कृष्ट बनाने के लिए परमपुरुषार्थ करें ।

हे देव ! जो माता-पिता, गुरुजनों, समाज और राष्ट्र के सहयोग से हमें जो धन सम्पत्ति मिली है और उत्तम गुण, कर्म, स्वभाव मिले हैं उनकी रक्षा हम सब प्रकार से करें इतना ही नहीं उन आदर्शों, परम्पराओं तथा शालीनता को बढ़ावें । वर्तमान में जो हमारी प्रतिष्ठा, यश, कीर्ति, सम्मान व वर्चस्व समाज में विद्यमान है उसकी प्रवृद्धि करें , कभी भी कहीं भी किसी के भी साथ किसी भी विषय में ऐसा व्यवहार न करें कि विद्यमान प्रतिष्ठा आदि न्यून हो जाए । ऐसी सतर्कता-सावधानी सदा बनायी रखें ।

हे सर्वश्रेष्ठ भगवन् ! इन सब के लिए आवश्यक है कि हम सब कुछ के आधार शरीर को स्वस्थ सुन्दर, बलवान्, पुष्ट, रोगरहित तथा दीर्घायु बनावें क्योंकि शास्त्रकारों ने कहा है कि '**शरीरमाद्यं खलु धर्म-साधनम्**' शरीर ही समस्त भौतिक-आध्यात्मिक लक्ष्यों का मूल कारण है ।

हे परमदयालु परमेश्वर ! उपर्युक्त सभी धन सम्पत्तियों का एक कारण वाणी है । वाणी की स्पष्टता, प्रामाणिकता, मधुरता और हितकारिता के माध्यम से सर्व प्रयोजनों को सरलता से पूर्ण किया जा सकता है । इसलिए आपसे प्रार्थना है कि हमारी वाणी को दोषों से रहित, निपुण व कुशल बनाओ । हे प्रभुदेव ! यह निश्चित है कि हमारे शरीर, वाणी, मन, बुद्धि आदि धन श्रेष्ठ होंगे तो हम सभी कार्यों को उत्तम रीति से करेंगे तो फिर हमारे दिन अच्छे हो ही जायेंगे, सुखदायी बन जायेंगे इसलिए आपसे हमारी यही प्रार्थना है कि हमें उत्तम बुद्धि, वाणी, शरीर आदि श्रेष्ठ धनों को प्रदान करो जिससे हम अपने जीवन के लक्ष्य को प्राप्त करने में सफल हो सकें ।

★ ★ ★

(२२)

उद्यानं ते पुरुष नावयानं जीवातुं ते दक्षतातिं कृणोमि ।
आ हि रोहेममममृतं सुखं रथमथजिर्विर्विदथमा वदासि ॥

(अथर्ववेद ८/१/६)

पदार्थ :- पुरुष = हे मनुष्य **ते** = तुझे को **उद्यानम्** = ऊपर उठना है **न-अवयानम्** = नीचे नहीं गिरना है **ते** = तुझे **जीवातुम्** = जीने के लिए **सुखम् रथम्** = सुख देने वाले शरीर को देता हूँ **आ रोह** = तू इस पर चढ़ **इमम् अमृतम्** = यह शरीर मुक्ति प्रदान करने वाला है **दक्षतातिम् कृणोमि** = साथ ही तुझे उत्साह, बल, दक्षता, साधन भी प्रदान करता हूँ **अथ** = इसके बाद तू स्वयं **जिर्विः** = योग्य स्तुत्य बनकर **विदथम् आवदासि** = अन्यों को ज्ञान का उपदेश कर, उनको भी लक्ष्य तक पहुँचा ।

भावार्थ :- हे पुरुष ! तुझे आगे बढ़ना है, गति में तेजी लानी है, ऊपर चढ़ना है यही तेरा कर्त्तव्य है । जीवन में चलते हुए कभी कहीं किसी क्षेत्र में व्यक्ति असफल हो जाता है । या जैसा फल, जितना परिणाम वह चाहता है उतना नहीं मिलता है अथवा जितने काल में व जितने साधनों में उसे पूर्ण सफलता मिलनी चाहिए उतने में नहीं मिलती है । इन सब प्रतिकूल परिस्थितियों की प्रतिक्रिया उस पर यह होती है कि वह हताश-निराश हो जाता है, निश्चल निष्क्रिय बनकर हार मान लेता है । और फिर वह उस कार्य को दुबारा करने की भी मन में हिम्मत नहीं बनाता है । यही धारणा बन जाती है कि मैं इस कार्य को नहीं कर सकता । मेरी शक्ति, सामर्थ्य, योग्यता, साधन अपर्याप्त हैं । मेरे लिए यह कार्य असंभव है, अनुचित है, अकर्त्तव्य है जैसे कि गीता में अर्जुन की स्थिति बनी थी ।

इसी निराशाजनक, हतोत्साहित, नपुंसकता की स्थिति से उबारने और व्यक्ति को उत्साहित करने हेतु मन्त्र में उपदेश किया है कि हे - मनुष्य ! मैंने तेरे में वही सब सामर्थ्य प्रदान किये हैं जो ऋषियों-मुनियों, महापुरुषों में प्रदान किये थे । यदि तू मन में तीव्र इच्छा उत्पन्न करके, अपेक्षित

साधनों का संग्रह करके उनके प्रयोग की यथार्थ विधि जान ले और पूर्ण पुरुषार्थ व घोर तपस्या के साथ कार्य प्रारम्भ करे तो सफलता निश्चित ही संभव है। तू मन में उस कार्य करने का दृढ़ संकल्प कर ले और निरन्तर उसके ही पीछे लग जाये तो कोई भी बाधा -विरोध, प्रतिकूलता किसी भी हो सकने योग्य लक्ष्य को प्राप्त होने से रोक नहीं सकता है।

जीवन में आगे बढ़ने, ऊपर उठने , सफलता प्राप्त करने वालों को आराम, नींद छोड़ने पड़ते हैं, भागना दौड़ना पड़ता है। तब जाकर वे लक्ष्य तक पहुँचते हैं। यह उत्कर्ष अपने आप सरलता से ही नहीं मिल जाता है। जो व्यक्ति सफल हुए हैं उनके भी ऐसे ही शरीर थे। ऐसे ही दो हाथ,पाँव,आँखें इतना ही आकार प्रकार था। उन्होंने इन्हीं सर्व सुखों को प्राप्त कराने वाले शरीर-इन्द्रिय-मन-बुद्धि की साधना करके इन्हें सुदृढ़, बलवान्, सात्त्विक बनाया और सफल हो गये।

परमपिता परमेश्वर वेद में उपदेश कर रहा है -हे मनुष्य ! अपने जीवन को अन्तिम लक्ष्य तक प्राप्त कराने के समस्त साधन, ज्ञान-विज्ञान तुझे उपलब्ध कराये हैं। तुझे न केवल स्वयं उस लक्ष्य को प्राप्त करना है अपितु अज्ञान, अभाव, अन्याय आदि ग्रस्त पशुवत् जीवन अथवा साधन-सम्पन्न होकर भी मात्र विषय भोगों या एषणाओं की पूर्त्ति में जीवन को काट रहे हैं उनको भी सन्मार्ग दर्शन कराना है, उन्हें भी भोगों की दलदल से उबार कर निर्मल-स्वच्छ-स्वतन्त्र बनाना है तथा अमृतपथ मोक्षगामी बनाना है। केवल अपने जीवन की मुक्ति से ही सन्तोष नहीं कर लेना है। आओ, ईश्वर भक्तों ! गद्‌गद् होकर सच्चे हृदय से ईश्वर से यह प्रार्थना करें कि वह हमें अन्तर्यामी रूप में सद्ज्ञान प्रदान करके मोक्षपद को प्राप्त करावे।

★ ★ ★

(२३)

उलूकयातुं शुशुलूकयातुं जहि श्वयातुमुत कोकयातुम्।
सुपर्णयातुमुत गृध्रयातुं दृषदेव प्र मृण रक्ष इन्द्र॥

(अथर्ववेद ८/४/२२)

पदार्थ :- इन्द्र ! = हे सुख शान्ति ऐश्वर्य चाहने वाले मनुष्य ! तू **उलूकयातुम्** = उल्लू की चाल को **शुशुलूकयातुम्** = भेड़िये की चाल को **उत** =और **कोकयातुम्** = चिड़िया की चाल को **सुपर्णयातुम्** = गरुड़ की चाल को **उत** = और **गृध्रयातुम्** = गिद्ध की चाल को **जहि** = समाप्त कर दे **रक्षः** = हे जीव ! इन सभी राक्षसों को **दृषदा इव प्र मृण** = जैसे पत्थर से औषधि कूटी जाती है वैसे इन सब को मसल दे, नष्ट कर दे।

भावार्थ :- पशुओं में और मनुष्यों में यही भेद है कि पशु केवल स्वार्थ को देखता है धर्माधर्म उचितानुचित की परिभाषा में नहीं काम करता है। जो मनुष्य आलम्बनों को प्राप्त करके क्षणिक सुख- साधन प्राप्ति हेतु कुछ भी इष्ट -अनिष्ट करने में नहीं हिचकिचाते हैं वे पशुवत् ही हैं। ऐसे पशुवत् व्यवहार करने वालों को निश्चित ही ईश्वरीय व्यवस्था के कारण मन में सतत भय, लज्जा, शंका बनी रहती है। इतना ही नहीं अग्रिम जन्म में वे विभिन्न कुत्ता, बिल्ली, गधा, बैल आदि दारुण दुःखदायी योनियों को भी प्राप्त करते हैं। इसलिए परमपिता परमेश्वर ने मनुष्यों को पशुओं की निम्न प्रवृत्तियों, उनकी चालों, स्वभावों, आचरणों, व्यवहारों को छोड़ने का इस मन्त्र में आदेश दिया है।

पहला पक्षी है **उल्लू**। उल्लू रात के अन्धकार को पसन्द करता है। अन्धकार अर्थात् अज्ञान या मोह। अज्ञान ही सारी बुराईयों का कारण बनता है और इसी के कारण मनुष्य अनेक प्रकार के दुःखों को भोगता है। अविद्या के कारण ही अनेक प्रकार के अन्धविश्वास, पाखण्ड, तर्क-युक्ति प्रमाणरहित मिथ्या मान्यताएँ मनुष्य समाज में फैल जाती हैं। ऐसे भ्रमित समाज में रहने वाले मनुष्य अनीश्वर को ईश्वर, अधर्म को धर्म,

अन्याय को न्याय, अकर्त्तव्य को कर्त्तव्य, हानि को लाभ और दु:खदायी को सुखदायी समझकर पकड़े रहते हैं । इसलिए मन्त्र में कहा गया है कि मनुष्य तू पढ़ लिखकर ज्ञानी बन ।

दूसरा पशु है **भेड़िया** । भेड़िया अत्यन्त क्रूर व द्वेषी प्राणी होता है और अत्यन्त निर्दयतापूर्वक छिपकर पीछे से अन्य प्राणियों पर टूट पड़ता है तथा उनको निर्दयतापूर्वक फाड़कर नोच-नोच कर खाता है । ऐसी ही प्रवृत्ति जब मनुष्यों की बन जाती है तो वे भी उस समय भेड़िये ही बन जाते हैं । ईश्वर आदेश देता है कि हे मनुष्य तू इस हिंसक, क्रूर व द्वेषी प्रवृत्ति को छोड़ दे ।

तीसरा पशु है **कुत्ता** । कुत्ते में दो-तीन विशेष अवगुण होते हैं । वे हैं अपनी जाति वाले अन्य कुत्तों के प्रति द्रोह और रोटी खिलाने वाले के प्रति चाटुकारिता तथा तीसरा है वमन को फिर चाट लेना । मन्त्र उपदेश करता है मनुष्य को चाहिए कि इस स्वजाति -अपने ही भाइयों, देशवासयिों के प्रति द्रोह को त्यागे, उपकार करने वाले की गलत बातों को न माने और त्यागी हुई बुराइयों को फिर ग्रहण न करे ।

चौथा पक्षी है **चिड़ा** । चिड़ा अत्यन्त कामातुर होता है । वह दिन भर कामवासना से ग्रस्त होकर उसी की पूर्ति के लिए विचारता है , बोलता है, दौड़ता है, भागता है, चेष्टा करता है । ऐसे ही कामी मनुष्य कर्त्तव्य, लज्जा, शर्म, दण्ड ,भय आदि सब को भुलाकर मात्र विषयभोगों की पूर्ति के लिए ही तन-मन-धन-समय-शक्ति व्यतीत कर देते हैं । अन्त में रोगी, निर्बल, जीर्ण- शीर्ण होकर अकाल मृत्यु को प्राप्त करके नष्ट-भ्रष्ट हो जाते हैं ।

पाँचवा पक्षी है **गरूड़** । यह पक्षी अपने पंखों के रंगरूप के कारण सुन्दर दिखाई देता है । इसे अपने सौन्दर्य पर बड़ा अभिमान होता है । इसलिए वह दूसरों को कुछ भी नहीं समझता है । इसकी गर्दन हर समय ऊँची ही बनी रहती है । यह अभिमान का दुर्गुण मनुष्यों में भी आ जाता है । वे अपने रंग, रूप, आकार, गुण-कर्म-स्वभाव, धन-सम्पत्ति, विद्या,

प्रतिष्ठा के आधिक्य के कारण अपने को अन्यों से बहुत बड़ा समझते हैं । समाज से मिल जुल नहीं पाते हैं और आपत्तिकाल में अनेक कष्टों को उठाते हैं ।

छठा पक्षी है **गिद्ध** । यह पक्षी अत्यन्त लोभी, लालची, असन्तोषी होता है । मरते हुए, सिसकते हुए, घायल, कहराते-चिल्लाते हुए, तड़फते हुए जिन्दा पशुओं के मांस को नोच नोच कर खाता है और अपनी पुष्टि करता है । यह वृत्ति जब मनुष्य की बन जाती है तो वह भी समाज में असहाय, निर्बल, अनाथ, विवश लोगों की मजबूरी का लाभ उठाकर अपनी तृष्णाओं की पूर्ति करता है ।

उपर्युक्त प्रकार की प्रवृत्तियाँ जब मानव समाज में अधिक व्याप्त हो जाती हैं तो समाज में सुख, शान्ति, सन्तोष, निर्भीकता, स्वतन्त्रता के स्थान पर भय-भ्रम-संशय उत्पन्न हो जाते हैं । इसलिए आओ ईश्वरभक्त धार्मिक भाइयो पहले अपनी फिर अन्यों की इन पशु वृत्तियों को दूर करने हेतु पूर्ण पुरुषार्थ करें ।

★ ★ ★

इन्द्रं वर्धन्तो अप्तुरः कृण्वन्तो विश्वमार्यम् ।
अपघ्नन्तो अराव्णः ॥ **(ऋग्वेद ९/६३/५)**

पदार्थ :- **इन्द्रम्** = ईश्वर को / राष्ट्र को **वर्धन्तः** = बढ़ाते हुए **अप्तुरः** = सत्कर्मों में प्रेरणा देते हुए **कृण्वन्तो विश्वम् आर्यम्** = समस्त संसार को श्रेष्ठ बनाते हुए **अपघ्नन्तो अराव्णः** = कंजूसी को नष्ट करते हुए जीवन बिताओ, आगे बढ़ो ।

भावार्थ :- परमपिता परमेश्वर वेद में न केवल अपने व्यक्तिगत जीवन को अपितु परिवार, राष्ट्र और अन्त में विश्व को भी आर्य बनाने की बात कहता है ।

व्यक्तिगतरूप से मनुष्य का प्राथमिक कर्त्तव्य है कि वह अपने जीवन को श्रेष्ठ बनावे, समृद्ध बनावे - विद्या, धन, बल, धैर्य, क्षमा, दया, संयम, त्याग, तप, पुरुषार्थ, निष्कामता आदि गुणों से अपनी उन्नति करे । किन्तु व्यक्तिगत उन्नति करते हुए समाज, नगर, प्रान्त, राष्ट्र के कर्त्तव्यों के प्रति अपनी आँखें न मूंद ले क्योंकि जब तक सम्पूर्ण विश्व में रहने वाले मनुष्य श्रेष्ठ उत्तम नहीं बनेंगे, तब तक उसकी व्यक्तिगत उन्नति अस्थिर है, अनिश्चित है । हमारे घर में रहने वाले सदस्य कितने ही संध्या, यज्ञ, जप, तप व आदर्शों का पालन करने वाले क्यों न हों जब तक हमारे पड़ौसी, गली, गांव के लोग अज्ञानी, पाखण्डी, अन्धविश्वासी, भूखे-नंगे, रोगी, दरिद्र होंगे तबतक हम शान्ति, सुखपूर्वक निश्चिन्तता का जीवन व्यतीत नहीं कर सकते ।

सारे विश्व को श्रेष्ठ बनाने के उपाय क्या हैं इस विषय में स्वयं ईश्वर कहता है कि सर्वप्रथम ईश्वर को बढ़ाओ अर्थात् ईश्वर के प्रति लोगों के मन में श्रद्धा, प्रेम, निष्ठा, विश्वास उत्पन्न करो । ईश्वर में अनन्य प्रेम के बिना वे उत्तम विचार, वाणी, चरित्र वाले नहीं बन पायेंगे । सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, सर्वज्ञ, न्यायकारी, कर्मफलदाता ईश्वर के अस्तित्व के प्रति मनुष्यों के मन में आस्था होगी तभी वे पाप कर्मों से बचेंगे । ऋषि कहते

हैं जिस देश के लोग सच्चे ईश्वर को जानते, मानते और उसकी आज्ञाओं का पालन करते हैं उस राष्ट्र की उन्नति होती है अन्यथा राष्ट्र का विनाश हो जाता है । एक ईश्वर की मनुष्यों के हृदयों में स्थापना, प्रतिष्ठा कर देने मात्र से सैकड़ों प्रकार के दुर्गुण, दुर्व्यसन स्वतः नष्ट हो जायेंगे और सैकड़ों सद्‌गुण व सत्कर्म स्वतः उत्पन्न हो जायेंगे ।

मन्त्र में दूसरा उपाय बताया है कि मनुष्यों को सत्कर्म करने की, पुरुषार्थ करने की प्रेरणा दी जाये । प्रत्येक मनुष्य ईश्वर प्रदत्त शरीर, मन, बुद्धि, सामर्थ्य व साधनों का यथोचित उपयोग करें । कर्मशील बनकर, पुरुषार्थी कर्मठ बनकर विशेष उद्यमों का कार्यों का सम्पादन करें । समाज में आलसी, प्रमादी, लापरवाह, पराश्रित, भाग्य के भरोसे जीने वाले अधिक होते हैं तो समाज, राष्ट्र का पतन हो जाता है ।

तीसरा उपाय वेद में बताया है कि समाज में जो व्यक्ति कृपण हैं, कंजूस हैं , अदाता हैं उनकी स्वार्थमयी प्रवृत्तियों, विचारों को नष्ट करना चाहिए । जो अपने व परिवार के लिए अन्न, जल, विद्युत्, भूमि, भवन, बस, गाड़ी, ट्रेन, टी.वी., स्कूल, बस , चिकित्सालय, सड़क आदि अनेकों सुविधाओं का प्रयोग करता है किन्तु राष्ट्र की उन्नति के लिए अपनी ओर से कुछ भी देता नहीं है या नाम मात्र दिखावे के लिए देता है ऐसे स्वार्थी, लोभी, मक्खीचूस , कृपणों को प्रथम समझा-बुझाकर दानी बनाना चाहिए अथवा राजा को उन्हें दण्ड देकर सीधा करना चाहिए । समाज के व्यक्तियों का कर्त्तव्य है कि वे भी कृपण व्यक्तियों के प्रति तिरस्कार उपेक्षा की भावना रखें,उनका सम्मान न करें ।

आओ वैदिकधर्मी आर्य महानुभावो ! ईश्वर की आज्ञा पालन करते हुए आज से ही अपने जीवन को श्रेष्ठ बनाते हुए सम्पूर्ण विश्व को श्रेष्ठ बनाने हेतु उद्यम करें । ऐसा विश्व बनायें जिसमें रहने वाले सभी मनुष्य एक ही ईश्वर की उपासना करते हों, उनकी एक ही भाषा हो, एक ही ध्वज हो, एक ही संविधान हो, एक ही राष्ट्रगान, एक ही सभ्यता, सहशिक्षा रहित गुरुकुलीय शिक्षा प्रणाली, जिसमें विद्यार्थी संध्या, यज्ञ, परिश्रम करते

हुए पढ़ते हों , शराब, मांस, जुआ, वेश्यावृत्ति, नग्नता, अश्लीलता, झूठ, छल-कपट, चोरी आदि का अभाव हो । न्याय, चिकित्सा, विद्या सब के लिए अनिवार्य व निःशुल्क हो, जिसमें पार्टियाँ न हो, चुनाव न होकर चयन हो, मताधिकार मात्र धार्मिक, पठित, बुद्धिमानों को ही हो, संविधान का भंग करने वालों को शीघ्र सार्वजनिक कठोरतम दण्ड दिया जाए ऐसे विश्व का निर्माण करें । ऐसा विश्व सृष्टि के आदि से महाभारत के समय तक था यह हमें इतिहास से पता चलता है और यदि हम संकल्प करें तथा इसके लिए संगठित होकर परम पुरुषार्थ करें तो ऐसा होना भविष्य मे भी संभव है । ईश्वर हम आर्यों पर ऐसी कृपा करे कि हम शीघ्र ही ऐसे चक्रवर्ती अखण्डित विश्व साम्राज्य की स्थापना करने में सफल हों ।

★ ★ ★

(२५)

न वा उ देवाः क्षुधमिद्वधं ददुस्ताशितमुप गच्छन्ति मृत्यवः ।
उतो रयि पृणतो नोप दस्यति-उताऽपृणन् मर्डितारं न विन्दते ॥

(ऋग्वेद १०-११७-१)

पदार्थ :- देवाः वा उ क्षुधम् = देवों ने केवल भूखे व्यक्ति को ही **वधम् इत् ददुः** = मौत नहीं दी है **उत आशितम्** = अपितु खाने पीने वाले समृद्ध व्यक्ति को भी **उप गच्छन्ति मृत्यवः** =अनेक प्रकार से मृत्यु प्राप्त होती है **उतो पृणतो रयिः** = दानी का धन तो **न उपदस्यति** = नष्ट नहीं होता है **उत अपृणन्** =बल्कि कंजूस व्यक्ति को **मर्डितारं न विन्दते** = सुख देने वाले सहयोगी मित्र नहीं मिलते हैं ।

भावार्थ :- बिना भोजन के, बिना पानी के भूखे-प्यासे व्यक्ति को मौत मार देती है, किन्तु इससे यह नहीं विचारना चाहिए कि भूख से ही व्यक्ति मरता है, बल्कि खाता पीता हुआ समृद्ध भी मरता है । खाने-पीने वाले, समृद्ध व्यक्ति की भी अनेक प्रकार से मौत होती है । शरीर से प्राण निकल जाने पर होने वाली मृत्यु के अतिरिक्त भी मृत्यु होती है, वह है जीते जी दुःखी होना, भयभीत रहना, खिन्न, अशान्त, चञ्चल बने रहना, असन्तुष्ट, उपेक्षित अनुभव करना । इसका कारण है स्वार्थपरता, लोभ, कञ्जूसी । जो व्यक्ति केवल अपने ही सुख समृद्धि, साधन सम्पन्नता के लिए दिन-रात भागता, दौड़ता है, दूसरों के लिए कुछ भी विचार नहीं करता है, न उन आवश्यकतामन्दों की किसी प्रकार की भी कभी सहायता करता है । सहायता की बात दूर रही कोई उनके पास जाकर सान्त्वना के दो शब्द भी नहीं बोलता है, बल्कि उनकी ओर देखता भी नहीं है, ऐसे धन वैभव, सम्पत्ति युक्त व्यक्ति भी मृत्यु जैसा दुःख अनुभव करते हैं । वे जीते जी मरे होते हैं, यह आध्यात्मिक मृत्यु है ।

मनुष्य को सुखी होने के लिए केवल रोटी, कपड़ा और मकान की ही आवश्यकता नहीं है । उसको जिस गली में वह रहता है, जिस समाज में रह रहा है, जिस गांव , नगर में रह रहा है उन व्यक्तियों का प्रेम, सहानुभूति, श्रद्धा, विश्वास भी चाहिए । व्यक्तिगत रूप में कोई कितना ही भौतिक साधनों से सुसम्पन्न क्यों न हो, धन-धान्य से परिपूर्ण क्यों

न हो, अन्यों के द्वारा उपेक्षित हो जाने पर, पड़ौसियों, मित्रों, सम्बन्धियों, समाज वालों से तिरस्कृत हो जाने पर वह असन्तुष्ट, अतृप्त ही रहेगा। इसी स्थिति को जीते जी मरना कहा जाता है ।

पारिवारिक, सामाजिक, राष्ट्रीय सुख के लिए यह आवश्यक है कि हम भी यथाशक्ति यथासामर्थ्य लोगों के काम आवें, उनके लिए समय, धन, साधन, बुद्धि का त्याग करें। उनके लिए कुछ कष्ट उठावें, दौड़ें,भागें। हम केवल और केवल अपने व अपने परिवार के लिए ही प्रयत्नशील रहते हैं, अन्यों को सुख पहुंचाने के लिए कुछ भी नहीं करते हैं तो वे हमारे लिए आपत्ति-काल में, आवश्यकता के समय में क्यों सहयोगी बनेंगे, क्यों कष्ट उठायेंगे ? इसलिए हम सुख चाहते हैं तो पहले औरों को सुख दें, उन पर दया करें, उनकी सहायता करें, उन्हें सम्मति दें, प्रेरणा दें, निर्देश करें , सान्त्वना दें । ऐसा होने पर ही वे हमारे द्वारा उपकृत व्यक्ति विकट परिस्थितियों में हमारा साथ देंगे, सहयोग करेंगे, सहानुभूति प्रदान करेंगे तथा सुख देंगे ।

सामाजिक, राष्ट्रीय सुख, सहानुभूति, प्रेम, निष्ठा, श्रद्धा प्राप्त करने के लिए नितान्त आवश्यक है कि हम जिस समाज, नगर, गांव, राष्ट्र में रह रहे हैं, उसके लिए अधिकाधिक यथासामर्थ्य, यथाशक्ति, यथावसर जन-कल्याण के लिए , सेवा-परोपकार के कार्यों को नि:स्वार्थ भावना से करें। परोपकार करने से, दान देने से धन, शक्ति आदि घटते हुए से दिखाई देते हैं, किन्तु ऐसा करने पर हमें प्रतिफल में समाज, राष्ट्र से इतना अधिक प्रेम, सुख, सहानुभूति आदि मिलते हैं कि उसकी तुलना में हमारा धन-सम्पत्ति का त्याग अत्यन्त तुच्छ सा प्रतीत होता है ।

समाज में धन-सम्पत्ति से युक्त व्यक्तियों का बहुत सा धन व्यर्थ पड़ा रहता है। उसका यदि थोड़ा सा भी भाग अन्यों के लिए त्याग दिया तो अनेकों व्यक्तियों की जीवनोपयोगी आवश्कताओं की पूर्ति हो जाती है और वे हमारे मित्र बन जाते हैं, सहयोगी बन जाते हैं। इसलिए आओ मित्रो ! अपने पास विद्यमान अनावश्यक, अनुपयोगी, अतिरिक्त धन-साधनों को औरों को प्रदान करें और अधिक सुखी बनें, प्रभु हमें ऐसे त्याग की प्रेरणा निरंतर देता रहे यही प्रार्थना है ।

★ ★ ★

(२६)

इच्छन्ति देवाः सुन्वन्तं न स्वप्नाय स्पृहयन्ति ।
यन्ति प्रमादम् अतन्द्राः ॥ **(ऋग्वेद ८/२/१८)**

पदार्थ :- इच्छन्ति = इच्छा करते हैं, चाहते हैं **देवाः** = देव लोग, ईश्वर-निर्मित प्राकृतिक पदार्थ-गुण-नियम व्यवस्था **सुन्वन्तम्** = पुरुषार्थियों को **स्वप्नाय** = केवल सपने लेने वाले, आलसी, प्रमादी व सुस्त व्यक्तियों को **न स्पृहयन्ति** = प्रेम नहीं करते हैं , नहीं चाहते हैं **यन्ति** = प्राप्त करते हैं प्रमादम्) आनन्द को-ऐश्वर्य को **अतन्द्राः** = पुरुषार्थी लोग ।

भावार्थ :- जो मनुष्य हर समय सावधान व सतर्क रहते हुए अपने कर्त्तव्य कर्मों को पूर्ण निष्ठा, श्रद्धा, पुरुषार्थ, त्याग एवं तप के साथ करते रहते हैं और अवसर प्राप्त करके अन्यों को भी उत्तम कर्म करने की प्रेरणा प्रदान करते हैं, न केवल प्रेरणा अपितु यथा सामर्थ्य सहायता प्रदान करते व करवाते हैं, उनमें उत्साह, प्रेरणा, पराक्रम भरते रहते हैं ऐसे व्यक्ति सदा जीवन में सुख, शान्ति, सन्तोष, निर्भीकता व स्वतन्त्रता की अनुभूति करते हैं। ऐसे मनुष्य एक क्षण भी व्यर्थ नष्ट नहीं करते हैं वे सदा उद्यमी, पुरुषार्थी, सतर्क, सावधान, जागृत, कटिबद्ध और सुसज्जित रहते हैं ।

ईश्वरीय, प्राकृतिक, शास्त्रीय, सामाजिक, संस्थागत आदर्श नियमों , अनुशासनों, विधि-विधानों का पालन करने में प्रारम्भ में तो कुछ कष्ट होता है किन्तु जब कार्य सम्पन्न हो जाता है तो परम शान्ति, आनन्द, सन्तोष की अनुभूति होती है ऐसी प्रकृति वाले, गुणों वाले मनुष्यों को माता-पिता, गुरु -आचार्य, विद्वान्-देव लोग चाहते हैं । ऐसे पुरुषार्थी, तपस्वी चरित्र वालों से समाज में प्रतिष्ठित लोग प्रेम करते हैं व उनका सम्मान करते हैं सुख-सुविधाएँ प्रदान करते हैं, उनका मार्गदर्शन करते हैं, उनके सहायक बनते हैं, उनका उत्साह वर्धन करते हैं तथा उनमें पराक्रम की भावना भरते हैं और शीघ्र ही ऊपर उठा लेते हैं, उन्हें उन्नत सफल व प्रतिष्ठित बना देते हैं ।

न केवल चेतन देवता अपितु प्रकृति से बने पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, आकाश आदि पंचमहाभूत तथा इन भूतों से बने शरीर, मन, बुद्धि, इन्द्रियाँ, वृक्ष-वनस्पति, कन्द-मूल, औषध आदि अन्न तथा प्राकृतिक नियम जो मनुष्यों के जीवन की रक्षा करते हैं वे भी पुरुषार्थी, तपस्वी, संयमी, अनुशासित, व्यवस्थित व्यक्ति से प्रेम करते हैं अर्थात् उनके लिए गुणकारी व लाभकारी बनते हैं । प्रकृति से बने पदार्थों को व प्राकृतिक नियमों को जो व्यक्ति ठीक प्रकार जानकर सतर्कता सावधानी पूर्वक उचित मात्रा में प्रयोग करते हैं तो भोग्य साधन व भोग्य पदार्थ भी मनुष्यों को सुख पहुँचाते हैं। इसके विपरीत जो व्यक्ति आलसी हैं, प्रमादी हैं एवं लापरवाह हैं, सुस्त हैं, निद्रालु हैं, तन्द्रालु हैं, दीर्घसूत्री हैं, बातूनी हैं, अनियमित, अस्त-व्यस्त, असंयमी, असावधान एवं असतर्क हैं। वे अपने इन दुर्गुणों के कारण भयंकर, त्रुटियाँ, भूलें, दोष करते हैं। परिणामस्वरूप वे अनेक प्रकार के कष्टों दुःखों को प्राप्त करते हैं। उनका जीवन आधि-व्याधि, चिन्ता, भय, शोक एवं बन्धन से ग्रस्त हो जाता है। वे अशान्ति, संशय व क्लेश से युक्त होकर अपने जीवन को नरकमय बना लेते हैं। ऐसे दुर्गुणों से युक्त व्यक्तियों को उपर्युक्त चेतन व जड़ देव प्रेम नहीं करते हैं उनको लाभ नहीं पहुँचाते हैं , उनको सुखी नहीं बनाते हैं बल्कि वे अपने द्वारा किये गये अपराधों, दोषों के कारण शीघ्र ही निर्बल, कृश रोगी बनकर मृत्यु को प्राप्त कर लेते हैं ।

अज्ञान के कारण त्रुटि-भूल हो जाना इतना दण्डनीय नहीं बनता है किन्तु जिसने पढ़ा है, सुना है , जाना है , देखा है , अनुभव किया है कि सत्य क्या है ? - असत्य क्या है ? धर्म क्या है ? - अधर्म क्या है ? न्याय क्या है - अन्याय क्या है ? उचित क्या है - अनुचित क्या है ? और जिन्होंने समय-समय पर असत्य आदि विपरीत आचरण करके हानि उठाई है , कष्ट भोगा है , दुःखी हुए हैं फिर भी वह सत्य को, धर्म को, कर्त्तव्य को, उचित को छोड़कर झूठ आदि की ओर झुकता है। एक बार ठोकर खाकर दुबारा फिर ठोकर खाता है, फिर खाता है, ठोकर

खाता ही रहता है वह तो कठोरतम दण्डनीय है । न उनको ईश्वर छोड़ता है, न प्रकृति के नियम । ऐसे व्यक्ति अन्त में दुरावस्था को प्राप्त होकर अकाल ही नष्ट-भ्रष्ट हो जाते हैं तथा यश और कीर्त्ति को भी समाप्त कर लेते हैं ।

इसलिए ईश्वर की इच्छानुसार हम अपने जीवन को उत्तम महान् बनाने हेतु मन में, परिजनों के समक्ष, विद्वानों की उपस्थिति में या सार्वजनिक रूप में संकल्प लेवें कि प्रातः जागरण , भ्रमण, व्यायाम,स्नान, ईश्वर का ध्यान, पंचमहायज्ञ का अनुष्ठान, ऋषिकृतग्रन्थों का स्वाध्याय, महापुरुषों-विद्वानों का सत्संग, सात्त्विक भोजन, सेवा, दान, परोपकारादि आदर्शों का पालन करेंगे, कितनी ही बाधाएँ, कष्ट, अभाव, प्रतिकूलताएँ क्यों न आयें यथा सामर्थ्य इनका परिपालन करेंगे। कभी किसी कारणवशात् नियम भंग हो भी जाये तो उसका दण्ड लेकर, प्रायश्चित्त करके पुनः उस पर दृढसंकल्प के साथ आरूढ़ होंगे। परमपिता परमेश्वर से प्रार्थना करें कि वह हमें इतनी शक्ति, साहस, बल, पराक्रम, उत्साह प्रदान करे कि हम अपने पूर्ण पुरुषार्थ के साथ समस्त अनुशासनों का पुरुषार्थपूर्वक पालन करते रहें, कभी भी शिथिल न हों, जिससे हमारा जीवन शीघ्र ही उन्नत होकर श्रेष्ठ बने ।

★ ★ ★

(२७)

ज्यायस्वन्तश्चित्तिनो मा वि यौष्ट संराधयन्तः सधुराश्चरन्तः ।
अन्योऽन्यस्मै वल्गु वदन्त एत सध्रीचीनान् वः संमनसस्कृणोमि ॥

(अथर्ववेद ३-३०-५)

पदार्थ :- **ज्यायस्वन्तः** = बड़ों की उपस्थिति/आदर **चित्तिनः** = विचारशील होना **मा** = नहीं **वियौष्ट** = अलग होना **संराधयन्तः** = एक-दूसरे की उन्नति में सहायक बनकर **सधुराश्चरन्तः** = एक धुरीवाले बनकर चलना **अन्यः अन्यस्मै** = एक-दूसरे के लिए **वल्गु** = मधुर **वदन्तः** = बोलते हुए **एत** = आगे बढ़ो **सध्रीचीनान्** = एक समान चालवाले **वः** = तुम मनुष्यों को मैं ईश्वर **संमनसः** = समान विचार वाले **कृणोमि** = बनने का आदेश देता हूँ ।

भावार्थ :- परिवार, समाज, राष्ट्र को कैसे सुखी बनाया जाये इस हेतु मन्त्र में महत्त्वपूर्ण बातें बतायी हैं । ईश्वर ने **सर्वप्रथम** आदेश दिया है कि घर में बड़ों के साथ रहो, बड़ों का तात्पर्य है जो ज्ञानवृद्ध है, अनुभववृद्ध है, वयोवृद्ध है । उनका आदर सम्मान करना, उनके निर्देशों, संकेतों, आदेशों का पालन करना । उन्होंने पुरुषार्थ करके, तपस्या करके, ठोकरें खा के, कष्टों को सहन करके बहुत कुछ प्राप्त किया है जो हमारे काम का है, सहायक है, लाभकारी है। इसलिए उनके साथ रहकर उनसे लाभ उठाना चाहिए ।

दूसरी बात है विचारशील होना । किसी भी कार्य को करने से पूर्व उस पर सूक्ष्मता से चिन्तन करना चाहिए कि इस कार्य का मेरे स्वयं पर, परिवार पर, समाज पर, राष्ट्र पर, विश्व पर क्या प्रभाव पड़ेगा, इसका क्या परिणाम निकलेगा क्या यह प्रामाणिक, योग्य, लाभकारी, उचित है ? विचार करके कार्य करने वाले व्यक्ति को असफलता नहीं मिलती ।

तीसरी बात ईश्वर ने बतायी कि अलग अलग मत होओ, एक साथ रहो । मिलकर रहने से बड़े कठिन कार्य भी सरल हो जाते हैं । पृथक्

पृथक् रहने में कुछ बातों में तो स्वतन्त्रता होती है किन्तु अनेक कार्यों में, जो संगठन से ही संभव होते हैं, वे या तो अधुरे होते हैं या सम्भव ही नहीं होते । परिवार में माता, पिता, पुत्र, पौत्र आदि सभी के मिलकर रहने में ही धन, बल, रक्षा, प्रतिष्ठा, कीर्ति की प्राप्ति होती है । परिवार के सदस्यों के वियुक्त हो जाने पर नहीं होती ।

चौथी बात बतायी गयी कि मात्र साथ ही नहीं रहना है अपितु एक दूसरे की उन्नति में सहायक भी बनना है । परिवार के सदस्य जब एक दूसरे की आवश्यकताओं, अपेक्षाओं का ध्यान रखते हुए उनको प्रथम अवसर प्रदान करते हैं, उस परिवार में प्रेम, श्रद्धा, विश्वास, शान्ति, सुख आदि बढ़ते रहते हैं । स्वयं कष्ट सहकर , भूखा-प्यासा रहके, भाग दौड़ करके दूसरे को सुख पहुँचाना, खिलाना, आराम देना ही यज्ञ है । केवल अपनी ही उन्नति चाहने वाले, दूसरों के प्रति ध्यान न देने वाले तो राक्षस या असुर होते हैं ।

पाँचवीं बात वेद ने बतायी कि परिवार हो या समाज, राष्ट्र हो या विश्व जब तक समूह में रहने वाले व्यक्ति एक मत, एक सिद्धान्त को मानने वाले होते हैं तभी कार्य सफल होते हैं, सुख की प्राप्ति होती है। समूह में, समाज में, राष्ट्र में रहने वाले व्यक्तियों की भाषा, भूषा, भोजन, भगवान्, भेषज, भजन, भक्ति भिन्न भिन्न होती है तो परिवार, समाज, राष्ट्र दुःख-सागर में गोते लगाता रहता है ।

छठी बात वेद ने यह बतायी कि परिवार समाज में रहने वाले व्यक्ति एक दूसरे के साथ प्रेम से बोलें, कटु-कठोर, ऊँची, तीव्र द्वेष अभिमान वाली भाषा का प्रयोग न करें । क्यों कि वाणी के प्रयोग से ही शत्रु, मित्र बनते हैं । कठोर वाणी से घनिष्ठ स्वजन भी शत्रु बन जाते हैं और मधुर, हितकारी बोलने से पराये शत्रु भी मित्र-साथी बन जाते हैं ।

सातवीं बात वेद ने बतायी कि समाज परिवार राष्ट्र में रहने वाले व्यक्तियों का मार्ग व शैली भी एक ही प्रकार की होनी चाहिए, भिन्न-भिन्न नहीं । अन्त में बताया कि जीवन के आगे बढ़ने के लिए, उन्नति

करने के लिए, सुख-समृद्धि की प्राप्ति के लिए समान विचार वाले बनो, सुन्दर विचार वाले बनो, सौहार्द-पूर्ण विशाल हृदय वाले बनो। क्षुद्राशय प्रतिशोध की भावना वाले मत बनो। परम पिता परमेश्वर से प्रार्थना है कि वह हमें उपर्युक्त आदेश को हृदयङ्गम करने का सामर्थ्य प्रदान करें तथा ऐसा उत्साह, प्रेरणा प्रदान करें कि अपने व्यवहार में इन आदेशों को क्रियान्वित करके न केवल अपने व्यक्तिगत जीवन को अपितु परिवार, समाज व राष्ट्र के जीवन को भी सुखी, शान्त और उन्नत बनावें।

★ ★ ★

(२८)

यं स्मा पृच्छन्ति कुह सेति घोरमुतेमाहुर्नैषो अस्तीत्येनम्।
सो अर्यः पुष्टीर्विजइवा मिनाति श्रद्धस्मै धत्त स जनास इन्द्रः॥

(ऋग्वेद २-१२-५)

पदार्थ : यं स्मा पृच्छन्ति = कुछ लोग प्रश्न करते हैं **कुह सेति** = कि वह तुम्हारा ईश्वर कहाँ है ? **उत ईम् घोरम् आहुः** = और कुछ लोग ईश्वर को बड़ा भयंकर बताते हैं। **न एषः अस्ति इति एनम्** = तथा कुछ तो यह भी कहते हैं कि वह ईश्वर है ही नहीं **सः अर्यः** = वह संसार का स्वामी,न्यायकारी ईश्वर **विजः इव** = भूकम्प के समान **पुष्टीः आमिनाति** = साधनों शक्तियों को नष्ट कर देता है **जनासः** = हे मनुष्यों **सः इन्द्रः** = वह ईश्वर ऐश्वर्यों का स्वामी है **अस्मै श्रत् धत्त** = उस निराकार ईश्वर पर श्रद्धा रखो।

भावार्थ :- जिस परमेश्वर ने इस धरती पर मनुष्य को उत्पन्न किया और प्रतिक्षण अपनी शक्ति, ज्ञान व प्रकृति से बनाए विभिन्न साधनों से उसकी रक्षा करते हुए जीवित रखा हुआ है। इतना ही नहीं संसार के पदार्थों का ज्ञान प्राप्त करने व उनको भोगकर सुख प्राप्त करने के लिए अनेक प्रकार के भोग साधन प्रदान कर रखे हैं, ऐसे परम हितैषी, दयालु, ज्ञान- बल व आनन्द के भण्डार परमपिता के विषय में आज मनुष्यों में संशय उत्पन्न हो गया है,बल्कि अनेक तो उसके विषय में ऐसा मानते हैं व कहते हैं कि ईश्वर नाम की कोई वस्तु ही नहीं है, यह तो कल्पना मात्र है, यदि कोई ईश्वर नामक व्यक्ति है तो भी जीवन में उसकी आवश्यकता नहीं।

यहाँ तक कि कुछ नास्तिकों ने तो दु:साहस करके ईश्वर को सिद्ध करने वालों को लाखों रुपये पुरस्कार देने की घोषणाएँ भी कर दी है। वे कहते हैं कि आज की इस वैज्ञानिक इक्कीसवीं सदी में हम अपने सारे प्रयोजन विज्ञान के द्वारा उत्पन्न किए साधनों से सिद्ध करने में समर्थ हो गए हैं, आज के सभ्य समाज में यदि कोई ईश्वर हो भी तो उसे निकाल

देना चाहिए, नष्ट कर देना चाहिए तथा सदियों से चली आ रही इस झूठी मान्यता को अब समाप्त कर देना चाहिए । ईश्वर जैसी काल्पनिक वस्तु के लिए आज हमारे पास कोई समय नहीं है, कि घण्टों उसके लिए आँख बंद करके व्यर्थ बैठकर समय बरबाद करते रहें, जीवन बहुत छोटा है, काम बहुत अधिक है इसलिए धनार्जन करके जितना सम्भव हो भोगों को भोगना चाहिए और जीवन को सुखी बनाना चाहिए ।

अनेकों के मन में ईश्वर के प्रति संदेह बन गया है क्यों कि वे जिन वस्तुओं की ईश्वर से प्रार्थना करते हैं वे उनको नहीं मिलती हैं । उनके कष्ट, अभाव, चिन्ता, दुःख दूर नहीं होते हैं इसलिए उनके मन में भी ईश्वर के प्रति श्रद्धा डगमगा जाती है वे भी नास्तिकवत् बन जाते हैं । ईश्वर के विषय में संशयित,भ्रमित, नास्तिक, व्यक्ति मात्र प्राकृतिक भोग साधनों वा भोगों को प्राप्त करने हेतु दिन-रात धनोपार्जन हेतु ही दौड़-भाग करते रहते हैं । इतना ही नहीं अधिक मात्रा में, शीघ्र, बिना परिश्रम के धन मिल जाए इस दुर्भावना के कारण झूठ, छल, कपट, अन्याय, शोषण और हिंसा तक करने में नहीं हिचकिचाते हैं ।

वे सोचते हैं बस, मुझे उत्तम भोजन, वस्त्र, भवन, गाड़ी, सुख-सुविधाएँ मिल जाएँ और मैं शीघ्रातिशीघ्र धनिक बन जाऊँ । कितने बिचारे नहीं जानते कि अनीति, कुनीति आदि के माध्यम से येन -केन प्रकारेण प्राप्त व्यक्ति की समृद्धि, ऐश्वर्य, विलास के साधन,प्रतिष्ठा का महल एक दिन धड़ाम से भूमिसात हो जाते हैं । भूकम्प के समान न जाने कब ऐसा झटका लगता है कि सब ठाठ -बाट चकनाचूर हो जाते हैं । भंयकर रोग, वियोग, हानि, बदनामी, मुकदमे आदि से व्यक्ति सहसा ही ऐसा ग्रस्त होता कि न जीते बनता है, न मरते । ऐसी विकट आपत्तियाँ आती हैं कि झूठा आत्मबल, मनोबल, दुःसाहस, पराक्रम, दम्भ, छद्म एक ही पल में समाप्त हो जाते हैं, व्यक्ति निस्तेज, निर्बल, निर्वीर्य, निढाल, निर्बुद्धि सा बन जाता है ।

इसलिए वेद मन्त्र के द्वारा ईश्वर ने उपदेश किया है कि हे मनुष्यो ! संसार का उत्पादक, धारक, रक्षक, पालक निराकार ईश्वर महान् ऐश्वर्य युक्त

है । उस पर पूर्ण श्रद्धा रखो, अविश्वास न करो । थोड़ा सा भी विचार करेंगे, सृष्टि को और सृष्टि के पदार्थों को देखेंगे तो विश्वास बनेगा कि वह कण-कण में व्यापक है तथा अपने ज्ञान व बल से संसार का नियमन कर रहा है । उसकी आज्ञाओं का पालन करने वाले ही सच्चा सुख-शान्ति प्राप्त करते हैं । उससे माँगो वह सब कुछ का देने वाला है किन्तु अपने बनाये नीति-नियमों से उसको छोड़कर जो स्वच्छन्दता से कुमार्गगामी बनकर संसार में जीता है, उसका विनाश एक दिन अवश्यंभावी है इसलिए चाहे वह हमें न दिखाई देता हो किन्तु वह हमें देख रहा है और अपना न्याय करेगा।

★ ★ ★

(२९)

सत्यमिद्वा उ तं वयमिन्द्रं स्तवाम नानृतम् ।
महाँ असुन्वतो वधो भूरि ज्योतींषि सुन्वतो भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥

(ऋग्वेद ८-६२-१२)

पदार्थ :- **वयम्** = हम **तमिन्द्रम्** = उस इन्द्र की **वै उ** = निःसन्देह **सत्यम् इत्** = सच्ची ही **स्तवाम** = स्तुति करें **अनृतम् न** = झूठी नहीं **असुन्वतः** = पुरुषार्थ, त्याग, तप, न करने वालों का **महान् वधः** = बड़ी हानि होती है और **सुन्वतः** = पुरुषार्थी व्यक्ति को **भूरि** = बहुत अधिक मात्रा में **ज्योतींषि** = ज्ञान-बल-स्वर्ग मिलता है **इन्द्रस्य** = ऐश्वर्यशाली ईश्वर के **रातयः** = दान **महाँ** = कल्याणकारी होते हैं ।

भावार्थ :- वेदों में, शास्त्रों में, पुराणों में, सर्वत्र लिखा है कि ईश्वर की उपासना करने वाला ईश्वरभक्त बुद्धिमान्, धनवान्, बलवान्, प्रतिष्ठित, शान्त, सुखी, प्रसन्न, निर्भीक, स्वतन्त्र बनता है किन्तु आज जगत में ईश्वर भक्त निर्धन, निर्बल, निस्तेज, पराधीन, भीरू, कायर, दुःखी क्यों है ? इसका क्या कारण है ? इसका उत्तर है झूठे ईश्वर की झूठी विधि से झूठे भक्त की उपासना । आज के इन दुरावस्था वाले भक्तों का ईश्वर भी झूठा है और उनकी उपासना भी यथार्थ नहीं है और उपासक स्वयं भी अपवित्र भावना वाले है । सच्चे भक्त सच्ची भावना से सच्चे ईश्वर की सच्ची विधि से उपासना करे तो कदापि दुरावस्था नहीं होती है ।

शास्त्रों में कहा गया है कि सत्य की ही जीत होती है झूठ की नहीं। सत्य कल्याणकारी है, सुन्दर है, सुख देने वाला है और शक्तिशाली बनाने वाला है किन्तु ध्यान देने योग्य बात है कि सत्य विजय तभी होती है जब सत्य को जानने वाले, बोलने वाले, लिखने वाले, सत्य को आचरण में लाने वाले व्यक्ति सुसंगठित हों, धैर्यवान् हों साहसी हों । पराक्रमी हो सत्य के प्रचार प्रसार में पुरुषार्थ करने वाले हों और सत्य की रक्षा के लिए बलिदान देने की भावना रखने वाले हों, तभी सत्य की विजय होती है अन्यथा नहीं । बोलने वाले, प्रचार करने वाले गुणगान करनेवालों, प्रदर्शन करने वालों के चने भी बिक जाती है, न बोलने वालों के बादाम

पिस्ता काजू भी पड़े रह जाते हैं समाज राष्ट्र में चोरी ,रिश्वत झूठ छल-कपट शोषण, अन्याय आदि गलत कार्यों को करके धन सम्पत्ति साधन सुविधाएँ प्राप्त कर लेते हैं । और सामान्य जनता को ऐसे लोग सुखी दिखाई देते हैं किन्तु वास्तव में ऐसा होता नहीं हैं ईश्वर की ऐसी व्यवस्था हैं कि जो पुरुषार्थ करके, धर्म न्याय नीति पूर्वक धनोपार्जन करता है उसे ही सुख मिलता है भले ही स्वार्थी, झूठे, छली, कपटी व्यक्ति बिना पुरुषार्थ के कुनीति, अनियम से धन, सम्पत्ति, साधन, सुविधायें प्राप्त कर लेते हैं।

वास्तव में ऐसे व्यक्ति सुखी नहीं होते हैं किन्तु ईश्वर के न्यायानुसार उनके मन में अशान्ति, भय, चिन्ता, शोक, दुःख बना ही रहता है यही इसकी मृत्यु है मृत्यु अर्थात सुखशान्ति से रहित होना सत्य, धर्म, न्याय, नीति, पुरुषार्थ से धन सम्पत्ति तो मिलती ही है साथ ईश्वर की ओर से उसे हृदय में विशेष ज्ञान, बल, आनन्द प्रेरणा मिलती है जिसके माध्यम से वह निरन्तर आगे बढ़ता रहता है ऊपर उठता रहता है और उसके सारे कार्य सफल हो जाते है इसके विपरीत अधर्मी, झूठा, छली, कपटी एक बार तो वस्त्र, भूमि, भवन, भोजन, यान, मान, प्रतिष्ठा से बढ़ता है अन्याय से धार्मिकों को दबा देता है या हरा देता है किन्तु कुछ ही काल में उसका अधर्म बना साम्राज्य ऐसे ही समूल नष्ट हो जाता है ।

जैसे कोई वृक्ष जड़ से काट देने पर धड़ाम से गिर जाता है नास्तिकों को अविश्वासियों को, भ्रमित व्यक्तियों को यह ज्ञान नहीं है कि ईश्वर की स्तुति प्रार्थना उपासना करने से क्या मिलता है मनुष्य भौतिक दृष्टि से कितना ही सुसम्पन्न हो गया हो किन्तु जीवन पथ पर बाधायें उपस्थित हो ही जाती हैं जिनका समाधान इस धन सम्पत्ति से संभव नहीं होता है इसके लिए तो असीम धैर्य संयम की अपेक्षा होती है विशेष बुद्धि कुशलता, चातुर्य, साहस, पराक्रम, उत्साह की आवश्यकता होती है और ये सब गुण ईश्वर से ही मिलते हैं इसलिए आओ, मित्रो उस महान् ऐश्वर्यशाली इन्द्र नामक परमेश्वर से सच्चे हृदय से प्रार्थना करके अलौकिक सब प्रकार का कल्याण करने वाले दानों को प्राप्त करें । उससे प्राप्त दान के बिना हमारा इस संसार में सुख शान्ति पूर्वक जीना सम्भव नहीं है उसकी सहायता से ही संम्भव है ।

★ ★ ★

(३०)

बालादेकमणीयस्कमुतैकं नेव दृश्यते ।
ततः परिष्वजीयसी देवता सा मम प्रिया ॥

(अथर्ववेद १०/८/२५)

पदार्थः- बालाद् = बाल से भी **एकम्** = एक वस्तु **अणीयस्कम्** = सूक्ष्मतम है और **एकम्** = दूसरी एक तो न इव) नहीं की तरह **दृश्यते** = दिखाई देती है **ततः** = उन दोनों से अलग तीसरी वस्तु **परिष्वजीयसी** = जो उन दोनों को आलिंगन किया हुआ है वह **देवता** = दिव्य गुण वाली वस्तु है **सा** = वह **मम** = मेरी **प्रिया** = प्रिय है ।

भावार्थ :- इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में, जो हमें दिखाई दे रहा है या जिसका हम अनुमान लगाते या पढ़ते सुनते हैं उस में केवल तीन ही मूल वस्तुएँ हैं चौथी वस्तु कोई नहीं है, इन तीनों में पहली वस्तु है प्रकृति, जो जड़ है, उसमें चेतनता नहीं हैं उस प्रकृति नामक वस्तु के तीन भाग हैं जिनके नाम हैं सत्त्व, रजस् और तमस् । इन तीन भाग वाली प्रकृ ति से यह सारा जड़ जगत् बना है । पृथ्वी, सूर्य, चन्द्रमा आदि ग्रह, नक्षत्र, उपग्रह इससे बने हैं, पृथ्वी, जल, अग्नि,वायु और आकाश जो पाँच महाभूत हैं वे भी इससे बने इन भूतों से मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट, पतंग तथा वृक्ष-वनस्पति, कन्द-मूल, फल, औषधी अन्न आदि पदार्थ बने हैं । यह प्रकृति अर्थात् इसके तीन भाग जो सत्त्व, रजस्, तमस् हैं ये अत्यन्त सूक्ष्म हैं बाल की नोक से भी सूक्ष्म टुकड़े रूप हैं, ये टुकड़े कभी नष्ट नहीं होते हैं, हाँ इनका परस्पर एक दूसरे के साथ मिलकर रूप, रंग, आकार, गुण तो बदलता रहता है ।

सृष्टि बनने से पूर्व प्रलयकाल में जब यह अपनी स्वाभाविक अवस्था में होते हैं तब आकाश में फैले रहते हैं । ब्रह्माण्ड के सारे चित्र विचित्र पदार्थ इनसे बनते हैं । ये सत्त्व, रजस्, तमस् नष्ट न होने वाले होते हुए भी परिवर्तनशील, विकारी, परिणामी होते हैं । इन्हीं तीन तत्त्वों से = प्रकृति

से बने हुए मनुष्य शरीर हैं और इन्हीं से खाद्यान्न बनते हैं । शरीर से अन्न आदि खाये जाते हैं, वे शरीर फिर नष्ट होकर मिट्टी बनकर फिर अन्न आदि के रूप में बन जाते हैं । कहने का तात्पर्य है कि ये सब बदलते रहते हैं । यह पकृति लक्ष्य की प्राप्ति के लिए साधन है ।

ब्रह्माण्ड में दूसरी वस्तु जीव है जो प्रकृ ति के सूक्ष्मतम पदार्थ के समान है । एकदेशी है किन्तु दिखाई नहीं देता है प्रकृ ति = सत्त्व, रजस्, तमस् में रंग, रूप, आकार है जो इनके स्थूल होने पर प्रकट होता है । किन्तु जीव में प्रकृ ति के समान रंग, रूप, आकार नहीं है, न यह स्थान घेरता है किन्तु यह सूक्ष्मतम होते हुए भी चेतन है तथा यह सुख-दुःख व भय की अनुभूति करता है, देखता, सुनता, खाता-पीता, चलता, दौड़ता है । किन्तु यह प्रकृ ति के साथ के जुड़कर शरीर, इन्द्रियों को प्राप्त करके ही देखने, सुनने की अनुभूति कर सकता है अकेला नहीं । देखने वाला जीव है किन्तु दिखाने वाली आँखें हैं, सुख दुःख की अनुभूति जीव करता है किन्तु उसे अनुभूति कराने वाले मन, बुद्धि आदि अन्तःकरण हैं जो प्रकृ ति से बने हैं ।

यह जीव स्वयं तो मरता-जीता नहीं है किन्तु इसके शरीर बनते बिगड़ते रहते हैं यह नये-नये शरीरों को धारण करता रहता है । इसी को मृत्यु और पुनर्जन्म कहते हैं । जीव में प्रकृ ति के समान जड़ता नहीं है अपितु चेतनता है किन्तु चेतनता होते हुए भी इसमें आनन्द गुण नहीं है । प्राकृ तिक पदार्थों में आनन्द = सुख गुण है किन्तु वह सुख दुःखों से युक्त है अर्थात् प्राकृ तिक पदार्थों से मिलने वाला सुख स्थायी, पूर्ण, विशुद्ध तथा दुःख रहित नहीं है इसलिए प्राकृतिक पदार्थों को भोगते हुए भी जीव कभी तृप्त नहीं होता है इसकी तृष्णा-प्यास समाप्त नहीं होती है, यह अतृप्त ही बना रहता है ।

तीसरी वस्तु ब्रह्माण्ड में ईश्वर है यह वस्तु चेतन है और सारे ब्रह्माण्ड में व्याप्त है, समस्त प्रकृ ति व प्राकृतिक पदार्थों को तथा जीवों को व्यापा हुआ है, अपने में समेटा हुआ है । वही इस प्रकृ ति के सूक्ष्म कणों को

लेकर इस संसार के समस्त पदार्थों को बनाता है तथा उसका संरक्षण एवं समय आने पर नाश भी करता है। वह निराकार है इसलिए कण-कण में व्यापक है। उसकी विशेषता यह है कि वह ब्रह्माण्ड के सभी जीवों के कर्मों का साक्षी बना रहता है तथा उन कर्मों का फल भी देता है किन्तु सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण गुण उसका यह है कि वह सदा आनन्द में मग्न रहता है, साथ ही वह अपने उपासकों तथा उसकी आज्ञाओं का पालन करने वाले भक्तों को भी आनन्द से परिपूर्ण कर देता है। उस ईश्वर के आनन्द को प्राप्त कर लेने के बाद मनुष्यों की संसार के पदार्थों को प्राप्त करने व भोगने की इच्छा समाप्त हो जाती है क्योंकि उससे मिलने वाला आनन्द, पूर्ण तथा विशुद्ध है और निरन्तर मिलता रहता है। प्राकृतिक पदार्थों से मिलने वाले सुख में यह विशेषता नहीं होती है।

इसलिए हे मनुष्यो ! प्राकृतिक पदार्थों को साधन मानकर अपने सांसारिक प्रयोजनों को पूर्ण करते रहो किन्तु उनको साध्य मत मानो। उनमें अधिक प्रेम न उत्पन्न करो। सर्वाधिक प्रेम = अनन्य प्रेम तो उसी ईश्वर से करो जो आनन्द, ज्ञान, बल आदि गुणों का भण्डार है। वह जब मिल जायेगा तो सारी कामनाएँ पूर्ण हो जायेंगी, किसी भी पदार्थ की इच्छा नहीं रहेगी।

★ ★ ★

(३१)

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ।
तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यते यनाय ॥

(यजुर्वेद ३१/१८)

पदार्थ :- **वेद** = जानता हूँ **अहम्** = मैं **एतम्** = इस **पुरुषम्** = ब्रह्माण्ड में व्यापक परमेश्वर को **महान्तम्** = जो सबसे बड़ा है **आदित्य-वर्णम्** = और महान ज्ञानी है **तमसः** = जो अज्ञान से **परस्तात्** = रहित है **तम्** = उसी ईश्वर को **एव** = ही **विदित्वा** = जानकर मनुष्य **अतिमृत्युम्** **एति** = मृत्यु से छूटता है **न** = नहीं **अन्य** = दूसरा कोई **पन्था** = मार्ग **विद्यते** = है **अयनाय** = जन्म-मरण के चक्र से बचने के लिए।

भावार्थ :- दुःखों की सूची में सर्वप्रथम नाम मृत्यु का है। क्योंकि जितना अधिक दुःख मृत्यु होने का पता चलने पर मनुष्य को होता है उतना दुःख अन्य प्रतिकूलताओं में नहीं होता। मृत्यु के आ जाने पर तो सब कुछ ही छूट जाता है, उसका सारा संसार ही नष्ट हो जाता है, जो उसने घोर परिश्रम करके बनाया था। कोई भी मृत्यु को नहीं चाहता है। मृत्यु से बचने के लिए संसार के हजारों वैज्ञानिक एवं डाक्टर बड़ी-बड़ी गवेषणा कर रहे हैं किन्तु वास्तविकता यह है कि जिसने जन्म लिया है वह मरेगा अवश्य। शारीरिक मृत्यु से तो भगवान भी नहीं बचा सकता है, तो फिर अन्त में मृत्यु से बचने का उपाय भगवान को प्राप्त करना बताया है क्या यह झूठा है ? नहीं यह झूठा नहीं है। कहने का भाव यह है कि भविष्य में जन्म और जन्म के पश्चात् जो मृत्यु होती है उस जन्म-मृत्यु के चक्कर से भगवान बचा लेता है। इस जन्म में जो शरीर मिला है वह तो मरेगा ही उसका कोई उपाय नहीं है।

मन्त्र में बताया गया है कि वह ईश्वर पुरुष है अर्थात् सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में व्यापक है अर्थात् सारा संसार उसमें डूबा हुआ है, वह इस संसार के बाहर भी है और अन्दर भी। जैसे पानी से भरी बाल्टी में रूई डाल

दी जाए तो रूई के अन्दर भी पानी होता है और रूई के बाहर भी, वैसे ही ईश्वर इस सारे संसार में व्यापक है । दूसरी बात ईश्वर के विषय में बताई कि वह आदित्यवर्ण है, जैसे सूर्य स्वयं प्रकाशित है । उसने किसी अन्य प्रकाश का आधार नहीं लिया है । रात्रि के बाद जब सूर्योदय होता है तो धरती पर विद्यमान समस्त वस्तुओं का यथार्थ ज्ञान अनायास ही हो जाता है वैसे ही समाधि अवस्था में योगी को जब परमात्मा का ज्ञान रूपी प्रकाश अन्तःकरण में होता है, आत्मा में होता है तो अन्तःकरण के समस्त ज्ञान-अज्ञान के संस्कारों का बोध जीवात्मा को हो जाता है ।

ईश्वर में अज्ञान अर्थात् राग- द्वेष तथा काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, स्वार्थ, आलस्य, प्रमाद आदि दोष नहीं हैं । जब परमात्मा का प्रकाश जीवात्मा को प्राप्त होता है तो वह भी सरलता से ,शीघ्रता से अपने अन्तःकरण में विद्यमान अविद्या जनित कुसंस्कारों को जानने में समर्थ हो जाता है, उनको पकड़ने का सामर्थ्य प्राप्त कर लेता है, उनको निर्बल करने में सक्षम हो जाता है और आगे चलकर ईश्वर से प्राप्त विशेष विज्ञान, बल तथा सहयोग से उन सभी को दग्धबीज भाव तक पहुँचाने =नष्ट करने में भी सफल हो जाता है । जब जीवात्मा में अविद्या के संस्कार नष्ट हो जाते है तो वह आगे जन्म नहीं लेता है और आगे जन्म ही नहीं लेता तो मृत्यु कहाँ से होगी । इसलिए वेदमन्त्र में कहा गया है कि उस ईश्वर को जान लेने, उसका दर्शन-साक्षात्कार-अनुभव कर लेने से जो जन्म के बाद मृत्यु और मृत्यु के बाद जन्म का जो क्रम चल रहा है उस से वह बच जाता है ।

हम चिन्तन करें तो स्पष्ट पता चल जाता है कि प्रकृति के साथ जुड़ने अर्थात् जन्म लेने पर = शरीर धारण करने पर ही दुःखों की प्राप्ति होती है । यदि शरीर न हो तो दुःख भी नहीं होते हैं । सारे पाप कर्म झूठ, छल, कपट, धोखा, चोरी हिंसा आदि शरीर के लिए किये जाते हैं, जब शरीर ही नहीं रहेगा तो दुःख भी नहीं होगा । न होगा बांस तो न बजेगी बांसुरी ।

सामान्य बुद्धि वाले व्यक्तियों की आज यह धारणा बनी हुई है कि अधिकाधिक धनार्जन करके और उससे भोग, ऐश्वर्य -विलास के उत्तम-उत्तम साधनों का हम संग्रह करके समस्त दुःखों से बच जायेंगे, कोई भी दुःख हमें प्राप्त नहीं होगा किन्तु यह धारणा उनकी मिथ्या है । ईश्वर को जानकर, उस पर पूर्ण विश्वास करके ही उसकी आज्ञाओं का पालन करके ही मनुष्य जीवन पथ पर चलते हुए पदे-पदे आने वाले दुःखों व क्लेशों से बचने में समर्थ हो सकता है और कोई मार्ग, तरीका, साधन या शैली नहीं है । इसलिए विभिन्न कष्टों, पीड़ाओं, बन्धनों, चिन्ताओं व क्लेशों से बचने के लिए आओ विवेकी जनो ! उस निराकार, सर्वज्ञ, दुःखनिवारक ईश्वर को जानें यही एक उपाय है ।

अधिकाधिक धनार्जन करके और उससे भोग, ऐश्वर्य -विलास के उत्तम-उत्तम साधनों का हम संग्रह करके समस्त दुःखों से बच जायेंगे, कोई भी दुःख हमें प्राप्त नहीं होगा किन्तु यह धारणा उनकी मिथ्या है। ईश्वर को जानकर उस पर पूर्ण विश्वास करके ही उसकी आज्ञाओं का पालन करके ही मनुष्य जीवन पथ पर चलते हुए पदे-पदे आने वाले दुःखों व क्लेशों से बचने में समर्थ हो सकता है और कोई मार्ग, तरीका, साधन या शैली नहीं है । इसलिए विभिन्न कष्टों, पीड़ाओं, बन्धनों, चिन्ताओं व क्लेशों से बचने के लिए आओ विवेकी जनो ! उस निराकार, सर्वज्ञ, दुःखनिवारक ईश्वर को जानें यही एक उपाय है ।

★ ★ ★